* ओ३म् *

क़ुर्आन् की छान बीन ।

(उर्दू से हिन्दी में अनुवाद)

—:o:—

मूल लेखकः—

अद्वितीय व्याख्याता, लेखक तथा दार्शनिक

स्वर्गीय

श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती

—:o:—

अनुवादक—

क़ुर्आन् के भाषा भाष्यकार, मुहम्मदी मत के मर्मज्ञ तथा अनेक पुस्तकों के लेखक

श्रीयुत् प्रेमशरण जी आर्य 'प्रणत'

—:o:—

प्रथम संस्करण } सर्वाधिकार स्वरक्षित { मूल्य ।=)

माडल प्रिन्टिंग वर्क्स, पन्नीगली, आगरा ।

आवश्यक आवेदन ।

—————:o:—————

प्रिय पाठक वृन्द ! स्वर्गीय श्रीस्वामी दर्शनानन्द जी के नाम और काम से आप अवश्य ही परिचित होंगे उन्होंने अपनी चमत्कार-युक्त लेखनी से जो साहित्य आर्य्यसमाज को दिया है वह ऐसा नहीं कि व्यर्थ समझ कर यों ही नष्ट हो जाने दिया जाय। अपितु उसे आर्य्यसमाज और वैदिक धर्म की बहुमूल्य और स्थायी सम्पति रखना चाहिये अतः हम चाहते हैं कि श्री स्वामी जी के समस्त साहित्य को हम एकत्रित करके उसे हिन्दी रूप दे कर स्थायी बनादें। इसी विचार से हमने उनकी रचित शास्त्रार्थ आगरा और कुआर्न की छानबीन नामक पुस्तक के केवल पिछले अंश का यह अनुवाद किया है। आशा है कि यह पाठकों के लिये विशेषतः रुचिकर होगा यदि जनता ने स्वामी जी के साहित्य को हिन्दी में देखने की रुचि प्रगट की तो उन के लिखित समस्त उर्दू साहित्य को शनैः शनैः हिन्दी रूप दे दिया जायगा।

पाठकों की मांग होने पर आगरा शास्त्रार्थ का भी हिन्दी अनुवाद कराके प्रकाशित करा दूंगा।

अनुवादक।

ओ३म्

क़ुर्आन् की छान बीन।

(प्रथम-भाग)

प्रिय मित्रो, मुसलमानी मत में—जहां तक उसके मन्तव्यों का मनन किया जाता है—क़ुर्आन् करीम को 'कलाम-ए-इलाही' (ईश्वरीय वाक्य) कहा गया है; परन्तु क़ुर्आन् की रचना पर ध्यान देने से यह विचार नितान्त विपरीत विदित होता है। क्यों कि प्रथम तो क़ुर्आन् के उतरने के विषय में ही यह शङ्का उत्पन्न होती है कि कुल क़ुर्आन् का पूरा पोथा एक ही बार में उतरा अथवा कालान्तर में अलग २ आयतें उतरीं ?

यदि यह माना जावे कि समूचा क़ुर्आन् एक-साथ उतरा तो इसका खण्डन क़ुर्आन् ही से होता है, क्यों कि प्रत्येक सूरत के शुरू में लिखा है कि यह सूरत मक्के में उतरी और यह मदीने में। जब कि सूरतें पृथक् २ स्थानों में उतरीं तो उनका (एक ही स्थान पर) एक ही बार उतरना, किस प्रकार मान्य हो सकता है। और, यदि यह मान लें कि क़ुर्आन् पृथक् २ आयतों में, जैसा कि हमारे मुसलमान मित्र मानते हैं, उतरा तो इसका खण्डन भी क़ुर्आन्

की आयतों से ही होता है; देखो क़ुर्आन्, सिपारा २५ सुरतु-द्दुख़ान।

वल् किताबिल् मुबीने इन्ना अन्ज़ल्नाहो फ़ी लयलतिम्मुबारकतिन् इन्ना कुन्ना मुन्ज़िरीन्।

(हमें) सौगन्ध है किताब बयान करने वाले की, निश्चय उतारा हमने उस (क़ुर्आन्) को बीच रात बरकत वाली के। निश्चय हम हैं डराने वाले।

पाठकगण! जब कि सौगन्ध खाकर ख़ुदा, इस बात को प्रगट करता है कि उसने क़ुर्आन् को बरकत वाली रात में उतारा तो उसके विरुद्ध समझना, खुल्लमखुल्ला ख़ुदा को झूठा समझना है, और सौगन्ध-खाने पर भी, ख़ुदा की बात को अविश्वस्त बताना है। हमें सन्देह है कि, ख़ुदा ने क़ुर्आन् को एक साथ उतारा अथवा उसकी आयतें पृथक् २ उतारीं—इन दो परस्पर विरुद्ध बातों में से किस को सत्य स्वीकार करें? जब इस बात का विचार करते हैं कि क़ुर्आन् की प्रत्येक सूरत के ऊपर जो उल्लेख है वह सत्य है तो तत्काल ही यह विचार उठता है कि जिस बात को ख़ुदा सौगन्ध खाकर कहता है वह कैसे असत्य हो सकती है। इसके अतिरिक्त, एक यह भी शङ्का उत्पन्न हो सकती है कि सूरतों के ऊपर जो कुछ लिखा है, वह ख़ुदा की ओर से है अथवा क़ुर्आन् के संग्रहकर्ता ने अपनी ओर से लिखा है? यदि यह मान लें कि मक्का और मदीना में उतरना भी ख़ुदा की ओर से है, तो उस समय किसी बात को भी सत्य स्वी-

कार करना कठिन प्रतीत होता है। और यदि यह कहा जावे कि, 'अमुक आयत मक्के में उतरी और अमुक मदीने में उतरी'-यह बात क़ुर्आन् के संग्रह कर्ता ने अपनी ओर से लिखी है, तो क़ुर्आन् में मिलावट होने का सन्देह होता है। प्रत्येक दशा में क़ुर्आन् को ईश्वरीय वाक्य सिद्ध करना इतना ही कठिन है जितना कि अन्धेरी रात को दिन और पटबीजना को सूर्य, सिद्ध करना। इस के अतिरिक्त, क़ुर्आन् के एक रात में उतरने के विषय में और भी आयतें हैं, देखो क़ुर्आन् सिपारा ३०, सूरतुल क़द्र।

१ इन्ना अन्ज़ल्नाहो फ़ी लयलतिल क़द्रे।

(अनुवाद) निस्सन्देह, उतारा मैंने क़ुर्आन् को बीच रात क़दर के

२ लयलतुल क़द्रि खयरुम्मिन् अल्फ़े शहर्।

(अनुवाद) क़द्र की रात हज़ार मास से बहतर है।

३ तनज़्ज़लुल मलाइकतो वर्रूहो फ़ीहा बि इज़्ने रब्बिहिम् मिन कुल्ले अम्रिन स-लामुन हिया हत्ता मत्लइल फ़ज्र।

(अनुवाद) उतरते हैं फ़रिश्ते और पवित्र आत्मायें है उसके साथ पालनकर्ता अपने के, वास्ते प्रत्येक काम के।

इस प्रकार के और बहुत से प्रमाण मिलते हैं जिनसे विदित होता है कि क़ुर्आन् एक रात में उतरा। इन दो

भेद-मूलक और परस्पर-विरोधी लेखों से स्पष्ट विदित होता है कि क़ुर्आन् का ईश्वरीय वाक्य होना तो दूर की बात है; यह तो किसी विद्वान का भी वाक्य नहीं हो सकता। क़ुर्आन् की आयतों में विरोध के कारण, और कतिपय बुद्धि-विरुद्ध बातों के देखने से, तथा मुसलमानों के कथनानुसार जिसकी स्तुति और भक्ति करने के लिये क़ुर्आन् उतरा हैं, उसी (ईश्वर) की निंदा करने से स्पष्ट प्रगट होता है कि क़ुर्आन् का कर्ता कोई अरब-निवासी और अपनी भाषा को मनोहर ढंग से बोलने वाला है। और क़ुर्आन् में भव्य भाषा के अतिरिक्त अन्य कोई वैज्ञानिक विषय ऐसा नहीं जो उसके प्रकाश से पूर्व विद्यमान न हो। और क़ुर्आन् के कर्ता ने दावा भी इसी बात का किया है कि यदि तुम सच्चे हो तो ऐसी एक सूरत बना लाओ। इस दावा से यह तो प्रमाण मिलता है कि उस समय में मुहम्मद साहब सुन्दर अर्बी के बोलने वाले थे। हमारे मुसल्मान मित्रों ने मुहम्मद साहब को, जो हमारे विचारानुसार क़ुर्आन् के कर्ता हैं, उम्मी सिद्ध किया है। अर्थात् वह बिल्कुल पढ़े हुये न थे। परन्तु उनके इस कथन से क़ुर्आन् को ईश्वरीय वाक्य नहीं कहा जा सकता, क्यों कि हज़रत अर्बी भाषा से भली भांति भिज्ञ थे—जिस भांति आज कल के दिल्ली और लखनऊ निवासी मूर्ख भी सुन्दर भाषा बोल सकते हैं, और इस विषय में अन्य नगरों के साधारण पठित पुरुष भी उनकी समता नहीं कर सकते। फिर मुहम्मद साहब तो अरब के सब से बड़े नगर, मक्का में पैदा हुये थे, उनके माता-पिता और पूर्व पुरुषा, मक्का के मन्दिर के पुजारी थे और उनको प्रत्येक समय ऐसे मनुष्यों से वार्तालाप करने

का काम पड़ता था जिनकी वहाँ प्रतिष्ठित से प्रतिष्ठित मनुष्यों में गणना होती थी। ऐसी अवस्था में भव्य भाषा का बोलना कोई चमत्कार नहीं गिना जा सकता। जिन लोगों ने पंजाब की एक कहानी-'क़िस्सा हीरा व राँझे', जिसको वारिस शाह ने बनाया है--पढ़ी है, वह बतलाते हैं कि इस में पंजाबी भाषा के सौन्दर्य्य की पराकाष्ठा है, परन्तु केवल इससे, उसका ईश्वरीय होना सिद्ध नहीं हो सकता, जब तक कि इसमें वर्णित विषय ऐसे न हों कि जिनके वैज्ञानिक विचार ईश्वरीय वाक्य कहलाने के योग्य हों। हमारे बहुत से मित्र कह देंगे कि वारिस शाह ने केवल एक कहानी का वर्णन किया है, परन्तु क़ुर्आन् में अनेक बातें ईश्वरीय वाक्य कहलाने योग्य हैं जैसे, मूर्ति पूजा का निषेध और एक-ईश्वर का उपदेश। परन्तु ऐसे महानुभावों का कथन किसी भाँति ठीक नहीं हो सकता। क्योंकि प्रथम तो क़ुर्आन् का अधिकांश पुरानी कथा-कहानियों से भरा है जिनको मुहम्मद साहब ने अपनी यात्रा में-जब कि वह अपनी नौकरी की अवस्था में शाम आदि ईसाई देशों जाया करते थे—सुना था, इस भाग को तो इलहाम से कोई सम्बन्ध, विदित नहीं होता।

दूसरा भाग ऐसी आज्ञाओं का है, जिनमें केवल मुहम्मद साहब के मतलब की बातें हैं-जैसे मुहम्मद साहब की सब से अधिक प्रिय पत्नी, आयशा पर व्यभिचार का दोष लगाया गया और उससे मुहम्मद साहब को अत्यन्त खेद हुआ। तब आयशा को कलङ्क से बचाने के लिये, मुसलमानों के कथनानुसार, यह आयतें उतरीं जिनका वर्णन क़ुर्आन् मंजिल ४, सिपारा १८ सूरये नूर में लिखा है। इस का

वर्णन शाह अब्दुल क़ादिर ने हाशिया पर लिखा है (—देखो नवलकिशोर प्रेस-प्रकाशित सटीक क़ुर्आन् के ४२५ वें पृष्ठ का हाशिया नं० २) इसके उपरान्त उस तूफ़ान अर्थात् लोक-अपवाद का वर्णन है जो, आयशा के सम्बन्ध में हज़रत ही के समय में फैला—पैग़म्बर एक दिन जिहाद से लौट कर आरहे थे, रात को प्रस्थान हुआ, नफ़ीरी और नगाड़ा साथ न था, मुसलमानों की माता (आयशा) शौचादि से निवृति के लिये जंगल को गई थीं और पीछे रह गईं। हज़रत की आज्ञानुकूल, एक मुसलमान सेना के पीछे गिरी हुई वस्तु उठाने के लिये चला करता था। उसने देखा कि वह पीछे रह गईं तो उसने उन्हें ऊंट पर बैठा लिया और आप नकेल पकड़ ली। इस प्रकार सेना में आयशा को पहुँचा दिया। काफ़िरों में एक मास तक इसकी चर्चा रही, पैग़म्बर भी सुनते रहे-बिना अनुसन्धान किये कुछ न कहते थे, परन्तु मन में कुपित रहते थे। एक मास उपरान्त जब मुसलमानों की माता (आयशा) ने सुना तो उन्हें अत्यन्त शोक हुआ, तीन दिवस निरन्तर रोती रहीं। तब अल्लाह तआला ने यह अगली आयतें भेजीं।

इसी प्रकार, जब मुहम्मद साहब ने अपने लेपालक बेटे, ज़ैद की जोरू ज़ैनब को, ज़ैद के त्याग (तलाक़) देने पर ले लिया, और लोगों ने उनको बुरा कहना आरम्भ किया, तब भी उन पर अनेक आयतें आईं-जिससे प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य के मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि क़ुर्आन् करीम में केवल मुहम्मद साहब के आदेश हैं जो उन्होंने अनुकूल अवसर देख कर मनुष्यों पर प्रकट किये। भला, ऐसी बातों को मूर्खों के अतिरिक्त अन्य कौन सत्य मान सकता है?

इसके अतिरिक्त, इस बात का भी जानना आवश्यक है कि कलाम-इलाही अर्थात् ईश्वरीय वाक्य में कौन से गुण होने चाहियें, जिस से प्रत्येक पुरुष उसकी पहिचान कर सके, क्योंकि विना लक्षण अर्थात् परिभाषा के यह बात किसी प्रकार भी ज्ञात नहीं हो सकती कि यह पुस्तक ईश्वरीय है अथवा मनुष्य की गढ़न्त। अतएव, सब से पूर्व इलहाम में इतने गुण होने आवश्यकीय हैं. प्रथम यह कि उससे—साक्षात् अथवा उसके अर्थों से—किसी प्रकार भी ईश्वर की निन्दा न होती हो। दूसरा; यह कि, वह पुस्तक अपनी आवश्यकता को सिद्ध कर सके। तीसरा:—सृष्टि की आदि में हो। चौथा:—वह किसी देश विशेष की भाषा में न हो। पांचवां:-उसमें क़िस्से-कहानियों और घरेलू झगड़ों का—जो किसी व्यक्ति विशेष के विषय में हों—चर्चा न हो। छटवां:-उसकी कोई बात सृष्टि-नियम और बुद्धि के विपरीत न हो। सातवां:-उन लेखों में, जो उसमें वर्णित हों, परस्पर विरुद्ध बातें; व्यर्थ पुनरुक्ति-दोष और वास्तविकता का विरोध विद्यमान न हो। कमसे कम इन सात बातों का इलहाम में होना आवश्यकीय है। क्यों कि इलहामी पुस्तकों में ईश्वर की मुहर तो लगी होती ही नहीं, जिससे विदित हो जावे कि वास्तव में यही ईश्वरीय है।

हमारे बहुत से मुसलमान मित्र यह कहेंगे कि इलहाम की यह परिभाषा आपने कहां से ज्ञात की? तो उसका उत्तर यह है कि सृष्टि-नियम में ईश्वरीय ज्ञान के लिये ऐसे ही मन्तव्यों का होना सिद्ध हो सकता है, क्योंकि ईश्वर के ज्ञान से, मनुष्य उस के गुणों को जानकर उसकी उपासना कर सकता है। यदि ईश्वर की पुस्तक में ही ईश्वर की

निन्दा हो, तो मनुष्य किस प्रकार उसके गुणों को जानकर उसकी उपासना करेगा ? दूसरे जब कि बुद्धिमान भी बिना आवश्यकता के कोई काम नहीं करता, तो ईश्वर जो सर्वज्ञ है, बिना आवश्यकता के व्यर्थ कार्य्य क्यों करने लगा ? यदि ईश्वरीय ज्ञान का विकाश सृष्टि की आदि में न माना जावे तो यातो इलहाम की आवश्यकता को अस्वीकार करना पड़ेगा अथवा ईश्वर के व्यक्तित्व पर अन्याय और अज्ञानता का आक्षेप आरोपित होगा जैसा कि प्रायः मनुष्य कहते हैं कि क्या कारण है कि ईश्वर ने आदम से लेकर मूसा तक मनुष्य के कल्याणार्थ कोई ईश्वरीय पुस्तक नहीं भेजी ? यदि कहो कि कोई पुस्तक थी तो उसको प्रस्तुत करना चाहिये। यदि नहीं थी, तो आक्षेप ज्यों-का-त्यों उपस्थित है। फिर उस पुस्तक में क्या न्यूनता विदित हुई जिसकी पूर्ति के लिये तौरेत उतरी, और तौरेत में क्या न्यूनता रहगई, कि जिसकी पूर्ति के लिये ज़बूर प्रगट हुई, और ज़बूर में क्या न्यूनता थी जिसकी पूर्ति के लिये इंजील आई और तौरेत, ज़बूर और इंजील में क्या दोष था कि उनको मन्सूख़ किया गया ?

प्रायः मौलवी महाशय यह कह देते हैं कि इंजील आदि पुस्तकों में लोगों ने मेल कर दिया था, परन्तु उनका यह कथन नितान्त प्रमाण-शून्य है। मुसलमानों को इंजील की मूल (वास्तविक) प्रति प्रस्तुत करके उन मिलाई हुई आयतों को प्रगट करना चाहिये, और जब तक उसका पता न लग जावे तब तक इनकी ऐसी धारणा नितान्त निराधार है।

यदि कोई मनुष्य कहे कि क़ुरान् में भी मिलावट है, तो मौलवी प्रमाण मांगेंगे परन्तु इंजील आदि

के सम्बन्ध में प्रमाण देने के लिये स्वयं प्रस्तुत नहीं। और यह किस भांति सम्भव हो सकता है कि ईश्वरीय पुस्तक में कोई मनुष्य मिला सके और उसका पता न मिले। आज तक ईश्वरीय वस्तुओं के साथ मानधीय वस्तुओं का मेल ही नहीं होसका। इस लिये इलहाम वही है जो सृष्टि के आरम्भ में प्रगट हो कर मनुष्यों को सन्मार्ग दिखलाता रहे।

वह किसी देश की भाषा में नहो-यह चौथी युक्ति इसलिये है कि ईश्वर के व्यक्तित्व पर अन्याय का आक्षेप (लाञ्छन) न लगाया जासके क्योंकि जिस देश की भाषा में होगा वहां के मनुष्य उसको सुगमता से पढ़ सकेंगे; अन्य देश-वासियों को अधिक परिश्रम करना पड़ेगा। प्रायः मौलवी महानुभाव यह भी कह देते हैं कि यदि किसी देश की भाषा में न हो तो लोग उसको कैसे पढ़ सकेंगे? इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो सृष्टि के आरम्भ में अनेक देश-भाषाओं का विभाग होही नहीं सकता, दूसरे जिन पर ईश्वर इलहाम प्रगट करता है, उनको उस इलहाम का वास्तविक अभिप्राय भी वही (ईश्वर) बतलाता है जिस से कि वह उसका नियमानुसार उपदेश कर सकें और किसी देश की भाषा में न होने से उस में मेल का भी सन्देह नहीं रहता।

पांचवी; उसमें क़िस्से-कहानी नहो। जो पुस्तक सृष्टि के आरम्भ में प्रगट होगी, उस में किसी प्रकार की कथा वार्ता होना सम्भव नहीं। और जिन में कथा कहानी हों, वह सृष्टि के आरम्भ में न होने से ईश्वरीय कहलाने के योग्य नहीं-इसका स्पष्ट अभिप्राय यह है कि मनुष्य बिना

शिक्षा के अपने विचारों की वृद्धि नहीं कर सकता और विद्या के बीज के बोये बिना शिक्षा का क्रम चल नहीं सकता क्यों कि सृष्टि में बिना बीज अर्थात् कारण के कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकती। अतएव विद्या के बीज—ईश्वरीय ज्ञान का अस्तित्व शिक्षण क्रम होने से पूर्व आवश्यक है, जिससे शिक्षा का क्रम प्रचलित हो जावे। जब एक बार शिक्षा का क्रम प्रारम्भ होगया, फिर किसी इलहाम की आवश्यकता नहीं रहती, क्यों कि आज तक कोई भी मनुष्य बीज नहीं बना सका। हां, बीज से बीज पैदा किया जा सकता है। इसी प्रकार कोई मनुष्य ईश्वरीय इलहाम में, मिलावट नहीं कर सकता और जिस में मिलावट हो जावे वह ईश्वर का इलहाम नहीं। जैसे परमेश्वर ने सूर्य्य को मनुष्य की आंख की सहायता के लिये बनाया है, अब यदि कोई मनुष्य चाहे कि मैं सूर्य्य में कुछ मिलादूँ तो असम्भव है। परन्तु सूर्य्य को मनुष्यों की आँखों से ओझल करदेना सम्भव है, जो केवल आँख पर हाथ रख देने से हो सकता है। यद्यपि सूर्य्य मनुष्यों की दृष्टि से प्रायः अदृष्ट होजाता है परन्तु परमात्मा उस समय नवीन सूर्य्य निर्माण नहीं करते और न पिछले सूर्य्य को रद्दी करते हैं निस्सन्देह मनुष्य-निर्मित दीपक आदि की यह अवस्था अवश्य होती है कि वह सर्वदा बदलते रहते हैं-जब नवीन ढंग का सुन्दर दीपक तय्यार हो जाता है तो पुराने और बुरे को रद्दी कर देते हैं। और, जिस पुस्तक में मनुष्यों के घरेलू झगड़े और कथा-वार्ता पाई जावें, वह केवल मनुष्यों का इतिहास हो सकती है—उसको किसी प्रकार भी ईश्वरीय ज्ञान नहीं कह सकते।

छठा–उसमें कोई बात सृष्टि-नियम और प्रत्यक्ष के प्रतिकूल नहो, क्यों कि सृष्टि-नियम ईश्वर रचित है अर्थात् वह परमेश्वर का कार्य है और जो पुस्तक ईश्वरीय हो वह भी उसका ज्ञान होगी। सत्पुरुषों के वचन और कर्म में अन्तर नहीं होता। जो मनुष्य कहे तो कुछ और जब करने का समय आवे तो करे कुछ उसको सत्पुरुष नहीं कहा जा सकता। ईश्वर जो समस्त पवित्रताओं का भण्डार है, उसके सम्बन्ध में तो यह कथन सम्भव ही नहीं कि उसके वचन और और कर्म में अन्तर हो; क्योंकि एक अज्ञानी पुरुष ही अपनी स्मृति की न्यूनता के कारण अपनी बात को काटता है अथवा एक बात को वह दुबारा कहता है, जिसका कारण उसका ज्ञान और स्मरण शक्ति की न्यूनता समझे जाते हैं। परन्तु सर्वज्ञ ईश्वर ऐसा नहीं कर सकता. उसके वाक्यों में अकारण पुनरुक्ति और परस्पर विरोध नहीं होसकता।

. . .

अब हम क़ुर्आन् की भीतरी बातों से सिद्ध करते हैं कि क़ुर्आन् में प्रत्येक प्रकार के दोष विद्यमान हैं जिससे वह किसी प्रकार भी, ईश्वरीय वाक्य तो क्या, किसी बुद्धिमान मनुष्य का भी वाक्य नहीं हो सकता। इलहामी पुस्तक का प्रथम गुण यह है कि वह पुस्तक परमेश्वर की निन्दा न करती हो। हम जहाँ तक देखते हैं क़ुर्आन् करीम के लेखों में ऐसे स्पष्ट शब्द विद्यमान हैं जिनसे ईश्वर की निन्दा होती है, देखो क़ुर्आन्, मंज़िल १, पारा २, सूरये बक़ः—

"मन्ज़ल्लज़ी युक्रिज़ुल्लाहा क़र्ज़न हस-

मन् ज़ल्लज़ी युक्रिज़ुल्लाह क़र्ज़न् हसनन् फ़युज़ाइफ़हू लहू अज़्आफ़न् कसीरतन् वल्लाहो यक़्बिज़ो व यब्सुतो व इलैहे तुर्जऊन् ॥

अनुवाद-कौन शख़्स है वह जो क़र्ज़ दे अल्लाह को-अ-ढ़िया ! बस दुगुना करे उसके वास्ते, दुगुना बहुत और अल्लाह करता है और करता है तरफ़ उसके फेरे जाओगे। अब देखिये, क़ुर्आनी ख़ुदा को भी ऋण की आवश्यकता-युक्त बतलाता है,—और आवश्यकता भी ऐसी कि दूना देने की प्रतिज्ञा करता है। आजकल का नियम यह है कि गवर्नमेंट तो चार-पांच आने का ही व्याज देती है और कोठीवाला बैंकर ॥) का व्याज देते हैं और ग्रामीण पुरुष १॥/) से ३=) तक व्याज देते हैं जुआरी लोग जिनका विश्वास बहुत कम होता है ~) प्रति रुपया व्याज देते हैं। परन्तु विदित नहीं कि क़ुर्आनी ख़ुदा को ऐसी क्या आवश्यकता आपड़ी है कि जिससे मनुष्यों में उसके प्रति अविश्वास की यहां तक वृद्धि हो गई प्रतीत होती है कि वह द्विगुण देने की प्रतिज्ञा कर के ऋण उधार माँगता है, परन्तु तब भी मनुष्य उसे उधार नहीं देते। इसका कारण कदाचित वह कपट हो जो क़ुर्आन्-ए-करीम ने ख़ुदा के विषय में प्रकट किया है, वरन् बुद्धि इस प्रकार अविश्वासनीय नहीं हो सकता। देखिये, क़ुर्आन् ख़ुदा को मक्कार कहता है, क़ुर्आन्, मंज़िल १, पारा ३ सूरये आलि इम्रान् तथा नवलकिशोर प्रेस का प्रकाशित पृष्ठ ६५।

"मकरू व मकरऽल्लाहो वऽल्लाहा खय्-

रुल् माकरीन्" ॥

अनुवाद-मक्र किया उन्होंने (काफ़िरों ने) और मक्र किया अल्लाह ने; अल्लाह बेहतर मक्कर करने वाला है।

पाठकगण, काफ़िरों का—जो ख़ुदा को नमानें—ताज़ीरात हिन्द की ४१७ दफ़ा का अपराधी होना तो कोई आश्चर्य्यजनक बात नहीं, परन्तु जिस समय क़ुरानी ख़ुदा भी मक्र व दगा करे अपितु बड़ा दग़ाबाज़ हो तो उसका विश्वास कौन करे? इसी लिये वह बार २ ऋण मांगता है परन्तु अविश्वासवश लोग, देने को उद्यत नहीं होते। देखो अन्यत्र भी क़ुरानी ख़ुदा को ऋण की आवश्यकता प्रतीत हुई। क़ुरान मन्ज़िल, पारा २८, सूरये तग़ाबुन, नवलकिशोर प्रेस प्रकाशित क़ुरान् का पृष्ठ ७१,।

"इन्तुक़रिज़ुऽल्लाहा क़र्ज़न् हसनय्युज़ाइफ़हो लकुम् व यग़्फ़िर्लकुम् वऽल्लाहो शकूरुन् हलीम्" ॥

अनुवाद-यदि ऋण दो अल्लाह को। ऋण अच्छा, दुगुना करेगा उसको तुम्हारे वास्ते और वह होगा वास्ते तुम्हारे और अल्ला क़द्रदान, है—अमल वाला।

पाठकगण, देखिये क़ुरानी ख़ुदा बार २ ऋण मांगता है और अविश्वासनीय (होने) के कारण दुगुना देने का व-

चन भी देता है, परन्तु तब भी मनुष्य ऋण देने के लिये उद्यत नहीं। विदित होता है कि लोग खुदाई कपट के भय से ऋण देना अङ्गीकार नहीं करते, वरन् इतने भारी ब्याज पर ऋण क्यों नहीं मिलता? देखिये, खुदा अन्यत्र पुनः ऋण मांगता है— कुआंन् पारा २७ सूरतुलहदीद—

"मन्ज़ल्लज़ी युक्रिजुऽल्लाहा क़र्ज़न् हसनन्

फ़ युज़ाइफ़हो लहू वलहू अजरुन करीम्" ॥

अनुवाद—कौन पुरुष है जो ऋण दे अल्ला को, ऋण अच्छा। बस दूना करे उसका वास्ते उसके और वास्ते उसके पुण्य और करामात।

यद्यपि खुदा ने दुगुना देने और पुण्य आदि अनेक पदार्थों का प्रलोभन दिया है, परंतु मनुष्यों का उस पर विश्वास ही नहीं होता। विश्वास हो कैसे, जब कि खुदा अपनी बातों को तत्काल-ही काट देता है? यदि उसकी कोई भी बात अटल होती तो उस पर विश्वास भी किया जाता। देखो खुदा अपना राज्य मुसलमानों का लड़ा कर स्थापित करना चाहता है। न कि अपने पैगम्बर की खुदा स्वयं सहायता करे जब कि सर्वशक्तिमान है। परन्तु बार-बार मांगने और मुसलमानों को लड़ा कर लाभ उठाने और अपनी बात की सत्यता के लिये अगणित सौगन्धें खाने से विदित होता है कि वह न सर्वशक्तिमान है और न सर्वज्ञ, अपितु उसका ज्ञान बहुत ही परिमित है। देखो खुदा अपनी बात को आप काटता है; देखो कुर्आन् मंज़िल २, पारा १०, सूरये अनफ़ाल, नवलकिशोर प्रेस प्रकाशित पृष्ठ २१४—

"या अय्युहन्नबिय्यो हर्रिज़िल् मुअमिनीना अलल् क़िताल़ि इय्यकुंम्मिन्कुम् इश्रुना साबिरूना यग़लिबू मि अतयने व इय्यकुम्मिन्कुम्मे आतु य्यग़लिबू अल्फ़म्मिनल्लज़ीना कफ़रू बि अन्नहुम् क़ौमुल्ला यफ़्क़हून" ॥

(अनुवाद) हे नबी ! रग़वत दिला मुसलमानों को ऊपर लड़ाई के । अगर हों तुम में से बीस आदमी सब्र करने वाले विजय पावें दो सौ पर, और अगर होवें तुम में से सौ विजय पावें एक हज़ार पर उन लोगों से कि काफ़िर हुये निस्बत इससे कि नहीं समझते ।

अब विचारिये कि क़ुरानी ख़ुदा यहां मुसलमानों को मार काट की शिक्षा देता है और साथ ही यह वरदान भी देता है कि यदि तुम में से १०० मनुष्य होंगे तो १००० पर विजयी होंगे । अब देखिये ख़ुदा का बरदान और प्रतिज्ञा कितनी शीघ्र असत्य होते हैं; देखो क़ुरान पृ० २१७

अल आनाख़फ़्फ़फ़ल्लाहो अन्कुम् व अलिमा अन्नाफ़ी कुम् ज़अफ़न, फ़ इय्यकुम्मिन्कुम्मे अतुन् साबिरतुय्यग़लिबू मिअत-

थनने, व इय्यकुम्मिन्कुम् अल्फु य्यग़्लिबू अल्फ़य् ने बिइज्निऽल्लाहे, वऽल्लाहो मअ़-स्साबितन् ।

अर्थात् जब तख़फ़ीफ़ की अल्लाह ने तुमसे, और जाना यह कि बीच तुम्हारे नातवानी है, पस अगर होवें तुम मे से सौ सब्र करने वाले विजय पावेंगे दोसौ पर, अगर होवें तुम में से हज़ार, विजय पावेंगे दो हज़ार पर, अल्लाह की आज्ञा के साथ। और अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है। लीजिये हज़रत ! ख़ुदा की भी अज्ञानता प्रगट होगई कि पहले तो दस के मुक़ाबिले में एक को तय्यार किया; जब देखा कि निर्बल हैं तो दो के मुक़ाबिले में एक को तय्यार किया। अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि जब क़ुरानी ख़ुदा ने पहले वरदान दिया था कि सौ होगे तो हज़ार का सामना कर सकोगे, उस समय उसे इस बात का ज्ञान था या नहीं कि मुझे यह वचन रद्द करना पड़ेगा ? यदि कहो कि ज्ञान था तो अपने ज्ञान के विरुद्ध असत्य वरदान क्यों दिया ? क्या उसे उस समय मुसलमानों की निर्बलता का ज्ञान न था ? जहां तक विदित होता है कि ख़ुदा को पहले वचन देते समय, इस बात का ज्ञान न था। यदि ज्ञान होता तो यह क्यों कहता कि जान.सच तुम्हारी निर्बलता है। यदि मुसलमानों का ख़ुदा सर्वशक्तिमान् होता तो क्या उसमें यह शक्ति न थी कि मुसलमानों की निर्बलता को निवारण करके, अपनी पूर्व प्रतिज्ञा पूर्ण करता ? यदि कहो कि, यह शक्ति थी, तो पूर्व

प्रतिज्ञा को रद्द क्यों किया? यदि कहो कि न थी, तो सर्व-शक्तिमान् किस प्रकार हो सकता है?

हमने जितना क़ुर्आन् के विषयों का अध्ययन किया, ईश्वर के अपमान के अतिरिक्त उसके पूर्ण गुण उसमें कहीं भी विदित नहीं हुये। कुछ भाई कह देंगे कि क़ुर्आन् ने ईश्वर का क्या अपमान किया? उनको ध्यान पूर्वक विचार करना चाहिये कि 'संसार के स्वामी' ईश्वर को ऋण की आवश्यकता बतलाना और शुद्ध परमात्मा को कपटी कहना और उसे अपनी प्रतिज्ञाओं को दस मिनट में रद्द करने वाला बतलाना—उसका अपमान नहीं तो और क्या है? यद्यपि और भी अनेक आयतें क़ुर्आन् में ऐसी विद्यमान हैं जिनसे ईश्वर का अपमान होता है; परन्तु हमने दिग्दर्शन-मात्र कराया है। और अब अन्य विषय पर विवाद प्रारम्भ करते हैं, क्योंकि लोग इतने से ही समझ जावेंगे कि क़ुर्आन्, ख़ुदा का अपमान करने वाला है। दूसरी बात यह है कि जब क़ुर्आन् का उतरना बतलाया जाता है, उस समय क़ुर्आन् की आवश्यकता थी अथवा नहीं? जहां तक विदित होता है, क़ुर्आन् में कोई ऐसी नवीन बात नहीं जो क़ुर्आन् से पूर्व विद्यमान न हो। हमने अनेक मौलवियों से प्रश्न किये कि बतलाइये, क़ुर्आन् से पूर्व कौनसा वैज्ञानिक सिद्धान्त न था, जिसके बतलाने के लिये क़ुर्आन् आया? अनेक लोगों ने तो इसका उत्तर ही नहीं दिया, परन्तु एक दो मनुष्यों ने यह कहा कि वहदत फ़िल् ज़ात, वहदत फ़िल् सिफ़ात और वहदत फ़िल् इबादत अर्थात् एकेश्वर-वाद, ईश्वर को अनुपम समझना और एक ईश्वर ही की उपासना, यह बात क़ुर्आन् से पूर्व संसार में न थी। परन्तु इस्लाम की यह धारणा नितान्त निराधार

है क्योंकि प्रथम तो वहदत फ़िल्ज़ात की शिक्षा उपनिषदों में उपस्थित थी, दूसरे श्री स्वामी शंकराचार्य जी भी एक ही ब्रह्म के मानने वाले थे जो मुहम्मद साहेब से पूर्व हो चुके थे। उपनिषदों का यह श्रुति—

"एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म नेह नानास्ति किञ्चन*"

वहदत फ़िल्ज़ात को सिद्ध करती है और उसका शब्दार्थ कलमे का ठीक पूर्वार्द्ध "ला इलाहा इल्लल्लाह" है अर्थात् एकमात्र ब्रह्म ही है दूसरा नहीं। अतएव वहदत फ़िल्ज़ात की शिक्षा जब प्रचलित थी, तो उसके वास्ते क़ुर्आन् के प्रगट होने की कोई आवश्यकता न थी। यदि यह कहा जावे कि वहदत फ़िल् सिफ़ात के लिये क़ुर्आन् की आवश्यकता थी तो यह भी ग़लत है, क्योंकि क़ुर्आन् से श्रेष्ठ वहदत फ़िल् सिफ़ात उपनिषदों में उपस्थित† थी। और यदि यह कहा जावे कि वहदत फ़िल् इबादत§ के लिये क़ुर्आन् आया तो भी असत्य है क्योंकि उपनिषद्, वेद, गीता आदि सहस्रों पुस्तकें क़ुर्आन् से पूर्व ऐसी विद्यमान थीं जिनमें एक ही ईश्वर की उपासना करने की आज्ञा है और दूसरों के सामने शिर झुकाना भयंकर पाप बतलाया गया है। परंतु इसके प्रतिकूल क़ुर्आन् ईश्वर को एक मात्र सिद्ध नहीं कर सकता किन्तु उसके साथ काम करने को फरिश्तों की एक फ़ौज मौजूद है, इसी कारण उसका नाम रब्बुल्-अफ़्वाज अर्थात्

---

*इसके अतिरिक्त वेद में है—पतिरेक आसीत् एक ही स्वामी है।

† न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते अर्थात् उस ईश्वर के समान और उससे बड़ा कोई नहीं है।

§नान्यपन्था विद्यतेऽयनाय एक मात्र ईश्वर की उपासना करने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं।

'सेनाओं का स्वामी' भी है। कोई काम नहीं जिसको क़ुरानी ख़ुदा अपनी शक्ति से कर सकता हो प्रत्युत प्रत्येक कार्य्य के लिये पृथक-पृथक् फ़रिश्ते नियत हैं—यहां तक कि क़ुर्आन् के उतारने के लिये भी हज़रत जिब्राईल से काम लेना पड़ा। अब यहां यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि हज़रत जिब्राईल तो, मुसलमानों के कथनानुसार, ख़ुदा के पास जाही नहीं सकते थे, जैसा कि लिखा है—"अगर यकसरे मू बरफ़र-परम्। फ़रोग़े तजल्ली बसोज़द परम्" अर्थात् यदि कुछ भी इससे आगे बढ़ूं तो ख़ुदा का प्रकाश मेरे पर जलादे। जब जिब्राईल ख़ुदा के पास पहुंचही नहीं सकते थे तो जिब्राईल के पास ख़ुदा का सन्देश कौन लाया? यदि कहो कि यहां तक ख़ुदा की क़ुदरत से आया तो फिर क्यों व्यर्थ ख़ुदा के कार्यों में फ़रिश्तों और पैग़म्बरों को सम्मिलित करते हो? ठीक आर्यसमाज के मानिन्द मानलो कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है, वह अपनी शक्ति से समस्त कार्य करता है। यद्यपि मुसलमान् ख़ुदा के कार्यों में फ़रिश्तों आदि को सम्मिलित करते हैं और रसूलों के नाम तो उनके मन्तव्य के मूल (कल्मे) तक में सम्मिलित होगये हैं। जो मनुष्य रसूल को न माने वह मुसलमान नहीं हो सकता, और प्रतिष्ठा के प्रगट करने के निमित्त ख़ुदा ने फरिश्तों को आदम के (सन्मुख) सिजदा (शीश नवाने) की आज्ञा दी। जिन फ़रिश्तों ने आदम को सिजदा किया वे सब नेक हो गये और जिन फ़रिश्तों के गुरू अज़ाज़ील ने आदम को सिजदा करना पाप समझा, वह लानती अर्थात् तिरस्कृत कहलाया। अब सोचना चाहिये कि क़ुर्आन् से एकेश्वर-उपासना की शिक्षा किस भांति मिल सकती है? जो ईश्वर के अतिरिक्त अन्य के पैरों में शिर घिसने की आज्ञा दे, वह मार्ग च्युत (गुमराह)

कराने वाला होता है, इसी कारण शैतान ने ख़ुदा को मार्ग-भ्रष्ट करने वाला बतलाया है देखो क़ुरान् सिपारा १४ सूरतुल हजर, पृष्ठ ३१४।

(१) व लक़द् ख़लक़्नल इन्साना मिन् सल्सालिम्मिन्हा मइम्मस्नून् ।

(अनु०) और अलबत्ता, निस्सन्देह पैदा किया हमने मनुष्य को बजने वाली मिट्टी से, जो सड़ी हुई कीचड़ से बनी हुई थी, पैदा किया। (यहां ख़ुदा ने यह नहीं बताया कि कीचड़ किस चीज़ से बनायी, क्योंकि मट्टी और पानी से मिलकर कीचड़ बनती है, न कि कीचड़ से मिट्टी।)

(२) वल्जाऽन्ना ख़लक़्नाहो मिन्क़ब्लो मिन्नारि-स्समूम् ।

(अनु०) और जिन्नों को पैदा किया हमने उसके पहिले इससे आग लौन की से। इस आयत से पता चलता है कि फ़रिश्ते और जिन्न एक ही हैं, क्योंकि जिन्नों को आग से पैदा किया है और फ़रिश्तों की उत्पत्ति का कहीं वर्णन नहीं है कि वे किस पदार्थ से पैदा किये गये ?

(३) व इज़्क़ाला रब्बुका लिल्मला इकते इन्नी ख़ालिक़ुम्बशरम्मिन् सल्सालिम्मिन् हामइम्मस्नून् ।

(अनु०) और जब कहा तेरे पालनकर्ता ने फरिश्तों के प्रति—निश्चय मैं उत्पन्न करने वाला हूं मनुष्य को बजने वाली मिट्टी से, जो बनी थी कीचड़ सड़ी हुई से।

(४) फ़ इज़ा सव्वय्तुहू व नफ़ख़्तो फ़ीहे मिर्रूही फ़क़ऊ लहू साजिदीन् ।

(अनु०) फिर जब ठीक करूं मैं उसको, और फूंकूं बीच उसके रूह अपनी से, तब गिर पड़ो उसके सामने सिज़दा करते हुए।

(५) फ़ सजदल् मलाइकतो कुल्लो-हुम् अज्मऊन् ।

अर्थ—तब सिजदा किया सब फ़रिश्त ने मिलकर।

(६) इल्ला इब्लीस, अबी अँय्यकूना मअ-स्साजिदीन् ।

अर्थ—कहा, ऐ इबलीस ! क्या है वास्ते तेरे यह, कि न हुआ तू सिजदा करने वालों में से ?

(७) क़ाला लम् अकुल्ले अस्जुदा लि बशरिन् ख़लक़्तहू मिन सल्सालिम्मिन हा म इम्मस्नून् ।

(अनुवाद) कहा कि मैं नहीं योग्य इस बात के कि सिजदा करूं वास्ते मनुष्य के, कि पैदा किया बजने वाली मिट्टी से (जो) कि बनी थी कीचड़ सड़ी हुई से।

(८) क़ाला फ़ख़्‌रुजमिन्हा फ़इन्नका रजीम् ।

(अनु०) कहा बस निकल उसमें से, बस निश्चय तू फेंका हुआ है ।

(९) व इन्ना अलय्‌कल्लअनता इला यौमिद्दीन् ।

(अनु०) और निश्चय ऊपर तेरे फट्कार है क़यामत के दिन तक ।

(१०) क़ाला रब्बे फ़अन्ज़िर्नी इला यौमे युब्‌अ़सून ।

(अनु०) कहा ऐ पालनकर्ता मेरे, बस ढील दे मुझको उस दिन तक कि जीवित किये जावें ।

(११) क़ाला फ़ इन्नका मिनल्मुन्ज़रीन् ।

(अनु०) कहा बस निश्चय तू ढील दिये हुओं में से है ।

(१२) इला यउमिल् वक्तिल् मअ़लूम ।

(अनु०) तर्फ़ दिन वक्त मालूम के ।

क़ाला रब्बे बिमा अग्‌वैतननी लउज़य्यिनन्ना

लहुम् फ़िऽल् अर्ज़ें वल् उग्वे यन्नहुम् अज्म-ईन् ।

(अनु०) कहा ऐ मेरे पालक ! इसके कारण कि तूने मुझ को मार्ग च्युत किया मैं अपना जीवन दूंगा मैं वास्ते उनके बीच ज़मीन के और फिर गुमराह करूंगा मैं उन सब को। उपर्युक्त वार्तालाप से, जो कुरानी ख़ुदा और एकेश्वर वादियों में श्रेष्ठ अर्थात् शैतान के मध्य में हुआ, स्पष्ट प्रगट है कि क़ुरानी ख़ुदा वास्तव में पाप फैला कर मार्ग-भ्रष्ट करना चाहता था, परन्तु निर्भय और सच्चे पुरुष कभी भी अपने धर्म से च्युत नहीं होते, इसलिये हज़रत शैतान, एकेश्वर वादियों में श्रेष्ठ (शैतान) एकेश्वर-उपासना का विश्वासी बना रहा, और शेष सब फ़रिश्ते मनुष्य-पूजक बन गये। पाठकगण ! क़ुरान् के कर्ता का इस कथा के लिखने में जो स्वार्थ है वह तो आप समझ ही गये होंगे, परन्तु कदाचित् कुछ मित्रों को इस विषय के लिखने का यथावत् अभिप्राय ज्ञात न हो, इस विचार से हम भी, संक्षेपतः वर्णन करते हैं-यह सम्वाद केवल इसलिये लिखा गया है कि लोग पैग़म्बरों की पूजा करना अस्वीकार न करें, और यह न कहने लग जायें कि ईश्वर और मनुष्यों के मध्य में तुम कौन हो ? और इसका पता इस्लाम के कलमे से भी लग जाता है जहां लिखा है—"मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" क्या केवल मुहम्मद साहिब ही ख़ुदा की ओर से भेजे हुए थे, शेष जितने पैग़म्बर आये वे ख़ुदा के भेजे हुए न थे ? मुहम्मद साहब का समस्त पैग़म्बरों को छोड़ कर, यहां तक कि आदम को भी जिसको, क़ुरान् के कथनानुसार, ख़ुदा ने फ़रिश्तों से सिजदा कराया,

सर्वथा छोड़कर केवल अपने आप को रसूल बताना स्पष्ट बता रहा है कि यह वाक्य कोई विशेष स्वार्थ रखने वाले मनुष्यों का है। इस कलाम से, मुहम्मद साहब का अपना स्वार्थ सिद्ध होने के अतिरिक्त अन्य कुछ आशय नहीं निकल सकता।

हमारे मित्र, मौलवी महानुभाव प्रायः कह देते हैं कि यह लेख शिर्क को प्रगट नहीं करता, किन्तु ख़ुदा ने एक पुरानी कहानी का वर्णन किया है। यदि इस कहानी का वर्णन एक स्थल पर ही होता, तो हम सम्भवतः किसी प्रकार मान भी लेते; परन्तु क़ुरआन् में इसका वर्णन अनेक स्थानों पर आया है। इससे स्पष्ट है कि क़ुरआन् के रचयिता की यह प्रबल इच्छा थी कि लोग इस कहानी को भली भांति स्मरण रक्खें जिससे उन्हें रसूल की आज्ञाओं की अवहेलना करने में, शैतान के समान तिरस्कृत होने का भय लगा रहे। सब से प्रथम इसका उल्लेख सूरये बक़र में है; यथा—

(१३) व इज़्क़ाला रब्बुका लिल्मलाइकते इन्नी जाइलुन् फ़िलअर्ज़े ख़लीफ़तन्,, क़ालूआ अतज्अलो फ़ीहा मँय्युफ़्सिदो फ़ीहा व यस्फ़िकुद्दिमाऽआ, व नह्नो नुसब्बिहो बिहम्दिका व नुक़द्दिसोलका क़ाला इन्नी अअ्लमु माला तअ्लमून।

(अनु०) जब तेरे पालनकर्ता ने फ़रिश्तों के प्रति कहा— निश्चय, मैं पृथिवी पर प्रतिनिधि बनाने वाला हूं। तब उन्होंने कहा—क्या बनाता है उसके बीच व्यक्ति को, कि उपद्रव करे बीच उसके, और डालेगा रक्त हम पवित्रता बयान करते हैं साथ तेरी प्रशंसा के और पवित्रता बयान करते हैं वास्ते तेरे। कहा निश्चय मैं जानता हूं।

(१४) व अल्लमा आदमल्‌अस्माअ कुल्लहासुम्मा अरज़हुम अललमलाइकते फ़क़ाला अम्बिऊनी बिअस्माए हाउलाए इन्कुन्तुम्सादिक़ीन्।

(अनु०) और सिखाये आदम को नाम सारे, और सामने किया उसको ऊपर फरिश्तों के और कहा उनको, बताओ मुझको नाम उनके अगर हो तुम सच्चे।

(१५) क़ालू सुब्हानका लाइल्मालना इल्ला माअल्लम्तना इन्नका अन्तल् अलीमुल्‌हकीम।

(अनु०) कहा उन्होंने पाक है तू, नहीं ज्ञान हम को मगर जो कुछ सिखाया तूने हमको। निश्चय तू है जानने वाला, नीतिज्ञ।

(१६) क़ाला या आदमो अम्बिहुम् बिअस्माएहिम्, फ़लम्मा अम्बाअहुम् बिअस्माएहिम् क़ाला अलम् अक़ुल्लकुम् इन्नी अअलमु ग़ैब-स्समावाति वल अर्ज़े व अअलमु मातुब्दूना व माकुन्तुम् तक्तुमून्।

कहा ऐ आदम! बताओ उनको नाम उनके बस जब बताये उनको नाम उनके। कहा—क्या न कहा था मैंने तुमको निश्चय मैं जानता हूं गुप्त वस्तुएं आसमानों और ज़मीन की, और जानता हूं जो तुम प्रगट करते हो और जो छिपाते थे। और जब कहा हमने फरिश्तों के प्रति—सिजदा करो आदम के प्रति, तब सिजदा किया परन्तु शैतान ने न माना और गर्व किया। और था वह क़ाफ़िरों में से।

ऐ वहदतफ़िलज़ात का दावा करने वालो, सोचो कि जो आदम को सिजदा न करे वह क़ाफ़िर है। जबकि खुदा को न मानने वाले भी काफ़िर हैं और आदम को सिजदा न करने वाले भी क़ाफ़िर थे, तो क्या अब भी वहदतफ़िलज़ात की डींग मारोगे? यही विषय क़ुर्आन मंज़िल २ सूरः ७ सिपारा वलौअन्नना, पृष्ठ १७४ पर वर्णित है।

(१७) व लक़द् ख़लक़्नाकुम् सुम्मा सव्वर्नाकुम् सुम्मा क़ुलना लिल्मलाइकतिस्जुदू

लि आदमा फ़ सजदू इल्ला इब्लीसा लम् यकुम्मिन-स्साजिदीन् ।

(अनुवाद) और निश्चय पैदा किया हमने तुमको, फिर सूरतें बनाईं हमने तुम्हारी फिर कहा हमने फ़रिश्तों के प्रति-सिजदा करो वास्ते आदम के सिजदा किया उन्हों ने, परन्तु इबलीस न हुआ सिजदा करने वालों में से—

(१८) क़ाला मा मनअका अल्ला तस्जुदा इज़् अमर्तुका क़ाला अना खय्रुस्मिन्हो खलक़्तनी मिन्नारि व्व खलक़्तहू मिन्तीन् ।

(अनुवाद) कहा, किस वस्तु ने रोका तुझको न सिजदा किया तूने जब आज्ञा की मैंने तुमको, कहा-मैं श्रेष्ठ हूं उससे। पैदा किया तूने मुझको आग से और पैदा किया उसको मिट्टी से।

(१९) क़ाऽला फ़ह्बितमिन्हा फ़मा यकूनो लका अन्ततकब्बरा फ़ीहा फ़ख़ुज् इन्नका मिनस्साग़िरीन् ।

कहा बस उतर उसमें से, बस नहा याग्य तरं वास्ते यह कि गर्व करे तू बीच उसके, बस निकल निश्चय तू नीचों में से है।

(२०) क़ाला अन्ज़िर्नी इला यौमे युब्‌असून् ।

अर्थात्—कहा ढील दे मुझ को कि उस दिन तक कि क़बरों से उठाये जावें ।

(२१) क़ाला इन्नका मिनल् मुन्ज़रीन् ।

कहा निश्चय तू ढील दिये गयों में से है ।

(२२) क़ाला फ़ बिमा अग़्वैतनी ल-अक़्उदन्नालहुम् सिरातकल् मुस्तक़ीम् ।

(अनुवाद) कहा बस शपथ है उसकी, मार्गच्युत किया तूने मुझको । हां, बैठूंगा वास्ते उसके राह तेरी सीधी पर ।

पाठक गण ! इसी विषय को क़ुरान सिपारा २३, मंज़िल ६, सूरये स्वाद में भी कहा है—

(२३) इज़्क़ाला रब्बुका लिल् मलाइकते इन्नीख़ा लिक़ुम्बशरिम्मिन्तीन् ।

(अनुवाद) जिस वक़्त कहा पालनकर्ता ने फ़रिश्तों के प्रति-निश्चय मैं पैदा करने वाला हूं मनुष्यों को मिट्टी से ।

(२४) "फ़इज़ा सव्वैतुहू व नफ़ख़्तो फ़ीहे मिर्रूही फ़क़ऊ लहू साजिदीन" ।

(अनुवाद) बस जिस समय सुधारूं उसको और फूं-कूं बाच उसके रूह अपनी, ज़मीन में फिर गिर पड़ो वास्ते उसके, सिजता करते हुए।

(२५)"फ़सजदल् मलाइकतो कुल्लुहुम् अज्मऊन्"।

फिर सिजदा किया सब फरिश्तों ने मिलकर।

(२६)"इल्ला इब्लीसा इस्तक्बरा व काना मिनल् काफ़िरीन्"

परन्तु इबलीस ने गर्व किया, और था (वह) काफिरों में।

पाठक गण! आगे वही विषय है जो पीछे तीन जगह दिखा चुके हैं। भला, इस पुनरुक्ति को, जो आदम को सिजदा के लिये है, देखकर कोई विद्वान मान सकता है कि क़ुर्आन् एक ही ईश्वर की पूजा बतलाता है. जब कि आदम को सिजदा न करने वाले काफ़िर हैं—मुहम्मद को रसूल न मानने वाले काफ़िर हैं? कहां तक कहें, बहुत सी वस्तुयें ऐसी हैं जिनको क़ुर्आन् ने ख़ुदा के साथ विश्वास में सम्मिलित कर दिया है। हमने जहांतक पता लगाया है उससे यही परिणाम निकलता है कि क़ुर्आन् केवल मुहम्मद साहब की आवश्यकताओं को पूरा करने वाला वाक्य है। जब मुहम्मद साहब ने कोई ऐसा कर्म किया जिसके कारण

जनता ने उनको बुरा कहना आरम्भ किया, झट मुहम्मद साहब ने एक आयत गढ़दी, जैसा कि प्रायः क़ुआन् में पाया जाता है। इसका एक उदाहरण हम प्रस्तुत करते हैं—हज़रत मुहम्मद साहब ने ज़ैद नामी एक मनुष्य को गोद ले लिया था, और उसका ज़ैनब नामी एक सुन्दर स्त्री से विवाह भी कर दिया था। एक दिन हज़रत ज़ैनब के घर अचानक चले गये। और ज़ैनब को वेपर्दा देख लिया (क्यों कि हज़रत का मन भी विषयप्रिय था, जैसा कि उनके जीवन चरित्र के* पढ़ने से, और सारे मुसल्मानों के लिये चार स्त्रियां और अपने लिये उन से अधिक करने से, विदित होता है) और उसकी प्रशंसा की। ज़ैनवने यह वात ज़ैद से कही। क्यों कि ज़ैद मुहम्मद साहब का सच्चा हितैषी था, उसने झट ज़ैनब को तलाक़ देदी और हज़रत ने विना निकाह, उसको अपनी स्त्री वनालिया। जब जनता में इस वात की चर्चा उठी और हज़रत की निन्दा होने लगी, क्यों कि यह वात ही इस प्रकार की थी कि प्रथमतो पोष्य पुत्र की पत्नी, दूसरे विना निकाह उस को अपनी स्त्री वना लेना !! फिर सर्व-साधारण में हलचल क्यों न मचती? जब हज़रत ने देखाकि मनुष्यों में वहुत अपयश होता है तो एक आयत उतारदी देखो क़ुरान् २२ वां पारा सूरये अहज़ाब—

(२६)"वमाकान लिमुअ मिनिव्व वलामुअ

*हज़रत मुहम्मद शाहब का जीवन चरित्र, पाठकों को अवश्य जानना चाहिये। हिन्दी में मुहम्मद साहब का ठीक २ जीवनचरित्र देखना है तो प्रेम-पुस्तकालय से प्रकाशित मुहम्मद-मीमांसा अथवा मुहम्मद सा० का विचित्र जीवन पढ़िये।

मिनातिन् इज़ाक़जल्लाहो वरसूलुहू अमरन् अँय्यकूना लहुमुल् खेयरतो मिन् अम्रेहिम् वमँ यअसिल्लाहा वरसूलहू फ़क़द्‌ज़ल्ला ज़लाल म्मुबीन् ।

अर्थात् और नहीं है उचित, किसी मर्द मुस्सलावतें-मान के जिस समय नियत करे खुदा और न और रसूल उसका कोई काम यह कि होवे वास्ते उनके इखत्यार काम अपने से और जो कोई आज्ञा का उल्लंघन करे अल्लाह की और रसूल उसके की तो निश्चय धर्म भ्रष्ट हुआ प्रत्यक्ष धर्म भ्रष्टत ।

(२७) वइज़्‌तकूलोलिल्लज़ी अन्अमल्ला-हो अलैहे व अन अमता अलैहे अमसिक् अलैका ज़ौजका वत्तक़िल्लाहा वतुखफ़ी फ़ीनफ़्सि-का मल्लाहो मुब्दीहे व तख् शन्नास वल्लाहो अहक़्क़ो अन्तख़शाहो फ़लम्मा क़ज़ा ज़ैदुम्मिन्हा वतरन् ज़व्वज्ना कहा लिकैला यकूना अल-लमुअमिनीना हरजुन् फ़ी अज़्वाजे अद्‌ए या

एहिम् इज़ाक़ज़ौमिन् हुन्ना वतरन् वकानो अम्
रुल्लाहो फ़्ऊलन् ।

(अनुवाद) और जिस वक़्त कि कहता था तू वास्ते उस शख़्स के कि कृपा की है तूने ऊपर उसके थाम रख ऊपर अपनी बीबी को और डर ख़ुदा से। और छिपाता था बीच अपने के जो कुछ अल्लाह प्रगट करने वाला है। और डरता था लोगों से और अल्लाह बहुत लायक़ है उसका कि डरे तू उस से, सो जब पूरी की ज़ैदने उस से हाजित, ब्याह दिया हमने तुझ से उसको, ताकि न होवे ऊपर ईमान वालों के तंगी बीच बीबियों के, आपा अल्ला की दी हुई ले पालकों उनके के जब रफ़ा की उन्हों से हाजित और है अल्ला का हुक्म करना

इस के हाशिये पर शाह अब्दुल क़ादिर लिखते हैं-हज़रत ज़ैनब, रसूल की फूफी की बेटी और क़ौम में अशराफ थीं। हजरत ने चाहा कि उनका निकाह करदें ज़ैद बिन हारिस से। ये ज़ैद असल अरब थे, पकड़ ज़ालिम ले गया था। शहर मक्के में उनको हज़रत ने मोल ले लिया, दस वर्ष को उम्र में इनके बाप भाई ख़बर पाकर मांगने को आये। हज़रत के देने पर यह घर जाने को राज़ी नहीं हुए और हज़रत से हुज्जत की। इस्लाम से पहिले के रिवाज के मुआफ़िक हज़रत ने उस को बेटा बना लिया। हज़रत ज़ैनब और भाई राज़ी न हुए तब यह आयत उतरी और राज़ी होगये और निकाह कर दिया। और देखो हाशिया पृष्ट ५२३ हजरत-ज़ैनब ज़ैद के निकाह में आईं तो वह उनकी निगाह हक़ीर (तुच्छ) जचीं, प्रकृति ने मेल न खाया तो लड़ाई हुई।

ज़ैद हज़रत से आकर शिकायत करते और कहते थे कि मैं इसे छोड़ता हूं। हज़रत मना करते थे कि मेरे कारण इसने तुझको स्वीकार किया है। अब छोड़ना दूसरी ज़िल्लत है। जब बार २ फ़ज़िया हुआ, हज़रत के दिल में आया कि यदि विवश हो, ज़ैद ने उसे छोड़ ही दिया तो ज़ैनब का मन इसके विना शान्त नहीं हो सकता कि मैं उससे निकाह करूं। लेकिन काफ़िरों की निन्दा का सन्देह हुआ कि वह कहेंगे कि बेटे की बहू घर में रक्खी, हालांकि लेपालक को किसी बात में हुक्म बेटे का नहीं। अल्लाह ताला ने हज़रत ज़ैनब का मान रक्खा और तलाक़ के बाद हज़रत के निकाह में दे दिया। अल्लाह की आज्ञा ही से निकाह निश्चित होगया। प्रत्यक्ष में निकाह की आवश्यकता नहीं हुई। जैसे अब कोई मालिक अपने लौंडी गु़लाम को बांध दे, ग़रज़ पूरी होने पर छोड़दें।

पाठक गण! इस घटना को ध्यान से पढ़िये और शाह अब्दुल क़ादिर के शब्दों पर विचार करिये। फिर बतलाइये कि क्या इससे यह फल नहीं निकलता कि मुहम्मद साहब ने अपने बेटे की बहू को विना ब्याह घर में रख लिया। शाह साहब का यह कथन, कि—"हज़रत ने रिवाज के अनुसार बेटा बनाया था वास्तव में लेपालक को हुक्म बेटे का नहीं"—किस प्रकार ठीक मान लिया जावे? क्योंकि यदि हज़रत का गुप्त निकाह बंध जाने से पहिले ये आयतें उतरी होती तो लोगों को यह विचार उत्पन्न होता कि मुहम्मद साहब ने जो कुछ किया ख़ुदा की आज्ञा से किया। परन्तु यहां पर बिल्कुल ही विपरीत व्यवस्था है, क्योंकि शादी पहिले हुई और आयतें बाद को उतरीं। ये सारी आयतें मुह-

म्मद साहब की इच्छा पूरी करने के अतिरिक्त और किसी काम की नहीं। ख़ुदा ने कहा और उससे मुहम्मद साहब का निकाह बंध गया, इसका कोई प्रमाण शाह साहब ने नहीं दिया। यदि कोई मनुष्य निष्पक्ष होकर जिज्ञासु-भाव से इन आयतों को पढ़ेगा, तो उसको अवश्य यही मानना पड़ेगा कि क़ुर्आन् ख़ुदा का वाक्य नहीं किन्तु मुहम्मद साहब की और कुछ उनके प्रशंसकों की रचना है। यहां पर निम्न-लिखित आक्षेप उत्पन्न होते हैं—

१—मुहम्मद साहब का, लोगों के डर से अपनी हार्दिक इच्छा अर्थात् ज़ैनब से शादी करने की चाह को छिपाना, प्रगट किया गया है, अब प्रश्न यह है कि जो मनुष्य पैग़म्बरी का दावा करे और लोगों की निन्दा से डरे, उसकी बात के सत्य होने का क्या प्रमाण है?

२—दूसरा प्रश्न यह है कि जब मुहम्मद साहब की इच्छानुसार ख़ुदा ने ऐसा वाक्य भेजा था कि जिसके द्वारा ज़ैनब और उसका भाई, जो विवाह से असन्तुष्ट थे, सन्तुष्ट होगये, उस समय क़ुर्आनी ख़ुदा को यह ज्ञात था या नहीं कि ज़ैनब का जी मेरे वाक्य से सन्तुष्ट न होगा? यदि कहो कि ख़ुदा जानता था कि उससे ज़ैनब को सन्तोष न होगा, और वह ज़ैद को, पैग़म्बर और ख़ुदा के समझाने पर भी, तुच्छ समझेगी तो फिर क्यों उसने, हज़रत ज़ैनब से ज़ैद का ब्याह रचा कर अपनी दया की भी निन्दा कराई? यदि ये आयतें पहले आतीं और बाद को मुहम्मद साहब ज़ैनब को घर में रखते तब तो कहा जा सकता था कि मुहम्मद साहब ने अल्लाह की आज्ञा पूर्ण करने के लिये यह कर्म किया, लेकिन मुहम्मद साहब ने ज़ैनब को पहिले ही घर में डाललिया

जैसा कि मुहम्मद साहब के जीवन चरित्र और उपर्युक्त आयतों से विदित होता है। इस जगह पर स्पष्ट कहना पड़ता है कि यह सब आयतें, मुहम्मद साहब ने उस बदनामी को, जो उस घटना से सर्व साधारण में हो रही थी दूर करने के लिये, स्वयं बनाईं। यदि यह ख़ुदा की ख़्वाहिश होती कि लेपालकों की स्त्रियों से विवाह कर लिया जाये तो वह तौरेत में जिसको मुसलमानों के कथनानुसार ख़ुदा ने पहिले उतारा था, इस बात की आज्ञा देता कि "लेपालक बेटे की स्त्री से विवाह करना बुरा नहीं।" इसके अतिरिक्त यदि मुहम्मद साहब उससे इसप्रकार निकाह करते जो सारी बिरादरी में होता तो यह भी कहना कुछ उचित होता कि लेपालकों की स्त्रियों से विवाह कर लेने के लिये ये आयतें उतरीं, परन्तु मुहम्मद साहब ने तो बिना निकाह ही उसे घर में डाल लिया, इससे निकाह किसी प्रकार भी धर्मानुकूल नहीं हो सकता, क्योंकि शरियत के अनुसार जो विवाह होता है, प्रथम तो बहुत से मनुष्यों के सामने परस्पर स्वीकृत ली जाती है और फिर क़ाज़ी निकाह पढ़ाता है। अब यहां न तो पारस्परिक स्वीकृति का कोई प्रमाण मिलता है और न निकाह ही पढ़ा गया। यदि कहो कि निकाह ख़ुदा ने पढ़ दिया, तो इसमें प्रमाण क्या?

जिससमय हज़रत आयशा पर व्यभिचार का दोष लगा उस समय दो चार गवाह मांग लिये। वास्तव में व्यभिचार चोरी आदि ऐसे कर्म हैं जो छिपकर ही किये जाते हैं, जिनके लिये चार साक्षियों की प्राप्ति बहुत ही कठिन है। परन्तु विवाह एक धार्मिक कर्म है जो सदैव जनसमूह के सामने होता है, परन्तु दोनों समयों पर नितान्त नियम-विरुद्ध कार्यवाही का होना अर्थात् व्यभिचार के विषय में चार गवाहों का मांगना

और निकाह को बिना गवाहों के ठीक समझना, पक्षपातियों के अतिरिक्त अन्य लोगों को कैसे उचित प्रतीत हो सकता है।

यह क़ुर्आन् मुहम्मद साहब का क़ानून है, और उसकी सारी ही बातों से वह स्वयं पृथक् है। यदि यह ख़ुदा का नियम होता तो कोई भी मनुष्य उससे पृथक् नहीं समझा जा सकता। यह तो मुसलमान लोग भी मानेंगे कि मुहम्मद सा० के पास इलहाम लाते हुए फरिश्तों को किसी ने नहीं देखा किन्तु इलहाम प्रायः रात्रि को आया करते थे और बेहोशी या स्वप्न की अवस्था में आते थे। और जब कि मुहम्मद सा० स्वयं सारी ही क़ुर्आन् की आज्ञाओं से पृथक् हैं तो कौन बुद्धिमान् मान सकता है, कि क़ुर्आन् मुहम्मद साहब की स्वरचित पुस्तक नहीं। बहुत से मनुष्य कहेंगे कि आपने कैसे मुहम्मद सा० को क़ुर्आन् की आज्ञाओं से पृथक् समझ लिया? इसका प्रमाण यह है कि प्रथम सब मुसलमानों के लिये चार स्त्रियां विहित हुईं, परन्तु हज़रत इस आज्ञा से पृथक् माने गये। दूसरे—सर्व साधारण के लिये बिना निकाह के किसी स्त्री को घर में डाल लेना विहित नहीं, परन्तु मुहम्मद साहब ने शरई निकाह के बिना ही ज़ैनब को घर में डाल लिया। तीसरे—और लोगों की स्त्रियों को तलाक़ लेने के उपरान्त विवाह कर लेने का अधिकार है, परन्तु मुहम्मद साहब की स्त्रियों को यह अधिकार नहीं था, किन्तु मुहम्मद साहब की स्त्रियों से निकाह करना क़ुर्आन् में अनुचित बतला या है।

हमारे बहुत से मुसलमान भाई कह देंगे कि हज़रत की स्त्रियों से औरों को निकाह करना इसलिये उचित नहीं कि वे सारे मुसलमानों की मां हैं, कारण यह कि मुहम्मद साहब

रसूल हैं। और मां के साथ किसी प्रकार भी निकाह उचित नहीं। परन्तु उनका यह उत्तर ठीक नहीं, क्योंकि यदि हम मुहम्मद साहब को पैग़म्बर होने के कारण सारे मुसलमानों और मुसलमानियों का पिता समझलें तो उनकी स्त्रियों को मां मानना पड़ेगा।

ऐसी अवस्था में कुल मुसलमानियां हज़रत की कन्या के समान होंगी क्योंकि पैग़म्बर होने के कारण हज़रत उनके बाप हैं, ऐसी अवस्था में उन्हें किसी स्त्री के साथ विवाह करने का अधिकार नहीं रहता। परन्तु कैसा अन्याय है कि वे अपनी स्त्रियों को दूसरे की स्त्री बनाने की लज्जा से बचने के लिये अपने को मुसलमानों का बाप समझें, परन्तु मुसलमानियों का बाप न समझें, क्या मुसलमानियें हज़रत के सम्प्रदाय में नहीं हैं? यदि हैं तो जिस प्रकार मुसलमान हज़रत के बेटे हैं उसी प्रकार मुसलमानियें हज़रत की बेटियां हैं। यदि मां के साथ निकाह विहित नहीं है तो बेटी के साथ कहां विहित है? परन्तु हज़रत तो क़ुर्आन् की प्रत्येक आज्ञा से पृथक् हैं, उनके लिये कोई नियम ही नहीं, वह जो कुछ करलें उसके लिये आयतें मिलेंगी। शोक इस बात तैयार का है कि इतनी मोटी बात को भी मुसलमान नहीं समझ पाते कि जब सारे मुसलमान हज़रत के बेटे हैं तो मुसलमानियां भी बेटियां हुई। फिर हज़रत का किसी से निकाह करना किस प्रकार उचित है।

इनके अतिरिक्त और भी प्रमाण मिलते हैं कि क़ुर्आन् में जो कुछ लिखा गया है वह सब हज़रत की इच्छा के अनुकूल लिखा गया है। एक दिन हज़रत की स्त्रियों ने कहा कि ख़ुदा जो कुछ आज्ञा देता है वह मनुष्यों को देता है स्त्रियों के लिये कोई आज्ञा नहीं। उसी समय हज़रत ने ये

आयतें उतारीं अर्थात् रचीं देखो क़ुर्आन् सिपारा २२ सूरतुल् अहज़ाब पृ० ५२१।

'या निसाअन्नबिय्ये मँय्यअते मिन् कुन्ना बि फ़ाहिशतिम्मुबय्यिनाति य्युज़ा अफ़ूल 'हल् अज़ाबो ज़िअ़फ़ैने वकाना ज़ालिका अ़ल ल्लाहे यसीर' ।

अर्थात्—हे बीबियो नबी की ! जो कोई आवे तुममें से साथ खुली निर्लज्जता के, दो चन्द किया जावेगा वास्ते उसके अज़ाब और यह है ऊपर अल्ला के आसान।

'वमँ य्यक्नुत् मिन् कुन्ना लिल्लाहे व रसूलिही वतअ़मल् सालिहन्नुअ्हा अज्रहा मर्रतैने व अ अ़तद्नालहा रिज़्क़न् करीमा" ॥

अर्थात् और जो कोई आज्ञा-पालन करे तुम में से अल्ला की और रसूल उनके की और काम करे अच्छे, देवेंगे हम उसको फल उसका दोबार और तैयार किया वास्ते उसके हमने भोजन अच्छा।

पाठक गण ! इसी प्रकार बहुत सी आयतें इस प्रकार की लिखी हैं जिनमें स्त्रियों को और विशेषतः नबी की स्त्रियों को उपदेश किया गया है। इन सारी आयतों के देखने से पता लगता है कि जिस समय मुहम्मद साहब को कोई आवश्यकता हुई झट उन्होंने ख़ुदा के नाम से आयत उतारली। बहुत से मुसल्मान भाई हम से इसका प्रमाण मांगेंगे कि मुहम्मद

साहब से स्त्रियों ने कब प्रश्न किया कि जिससे उन्होंने ये आयतें उतार लीं? इसके उत्तर में देखो कुआंन् पृष्ठ ५२२ हाशिया छापाखाना नवल किशोर—"हज़रत की एक स्त्री ने कहा था कि क़ुआंन में सब ज़िक्र है मर्दों का-औरतों का कहीं नहीं, उस पर यह आयत उतरी—नेक औरतों की ख़ातिर को नहीं तो जो हुकम मरदों को कहा सो औरतों पर भी लागू है। इस्वास, पृथक् कहने की आवश्यकता नहीं।"

इस के अतिरिक्त प्रायः लोग मुहम्मद साहब के घर जाते और देर तक बातें करते रहते जिससे हज़रत को बहुत कष्ट होता। और वह उनको घरसे बाहर निकालना चाहते, परन्तु संकोच से और असन्तुष्ट हो जाने के भय से कुछ नहीं कहते थे कि ऐसा न हो जिससे संप्रदाय में मत-भेद होजावे। अतः लोगों को अधिक देर तक बैठने से रोकने के लिये, मुहम्मद साहब ने ये आयतें उतारीं अर्थात् गढ़ीं; देखो क़ुआंन सिपारा २२ सूरतुल् अहज़ाब—

या अय्यो हल्लज़ीना आमनू ला तद्‌खुलूबुयूत नबिय्ये इल्ला अँय्युअज़ना लकुम् इला तआमिन् ग़ैरा नाज़िरीना इनाहो वला किन् इज़ादो ईतुम् फ़द्‌खुलू फ़ इज़ा तइ-म्तुम् फ़न्तशिरू वला मुस्तअनिसीना लिह-दीसिन् इन्ना ज़ालिकुम् काना युअज़ि नबिय्ये

फ़यस्तह्यी मिन्कुम् वल्लाहो ला यस्तह्यी मि-
नल्हक़्क़े व इज़ा सअल्तुमूहुन्ना मताअन्
फ़स् अलूहुन्ना मि व्वराए हिजाबिन् ज़ालि-
कुम् अत्हरो लि क़ुलूबेकुम व क़ुलूबे हिन्ना
व माकाना लकुम् अन्तुअज़ू रसूलल्लाहे
वला अन्तकिहू अज़्वाजहू मिन्बअ़दिही अबदन्,
इन्ना ज़ालिकुम् काना इन्दल्लाहे अज़ीम् ॥

अर्थात्—अय लोगो ! जो ईमान लाये हो, मत घुसो घरों में पैग़म्बरों के, पर यदि आज्ञा दी जावे वास्ते तुम्हारे खाने के प्रतीक्षा न करो वास्ते पकने उसके के परन्तु जब बुलाये जाओ तुम, तब (घर में) घुसो जब खाचुका हो तभी पृथक् हो जाओ और मत बैठे रहो मन लगा रहने वाले वास्ते बातों के। निश्चय यह काम है कष्ट देना नबी को। बस झिझकता है तुमसे और अल्लाह नहीं झिझकता सत्य बात से। और जिस वक्त मांगा चाहो उनसे कुछ वस्तुयें, पस मांगलो उनसे पीछे परदे के से ! यह बहुत पवित्र करने वाला है वास्ते तुम्हारे मनों के और वास्ते मनों उनके के। और नहीं उचित वास्ते तुम्हारे कि कष्ट दो रसूल-ख़ुदा को और न यह कि निकाह करो बीबियों उसकी को पीछे उसके (मरने के)। कह दे सत्य यह है निकट अल्लाह के बड़ा पाप।

प्रिय पाठक गण ! उपर्युक्त आयतों और मुहम्मद साहब के घरेलू झगड़ों के प्रकरण को देखने से आपको भले प्रकार विदित हो जावेगा कि कुर्आन्शरीफ़ सारेका सारा ही मुहम्मद साहब की उपयोगी बातों का संग्रह है। उसमें जहां कहीं ख़ुदा की उपासना का थोड़ा बहुत प्रसंग आया है, वह केवल इस बात के लिये कि, लोग यह न कहें कि मुहम्मद साहब ने सब कुछ अपने वास्ते गढ़ा है। जहां ख़ुदा की आज्ञा का पालन करना कहा है, वहीं उसके रसूल मुहम्मद साहब की आज्ञा को मानना बतलाया है। यह तो प्रत्येक मनुष्य जानता है कि क़ुर्आन् शरीफ़ के अतिरिक्त मुसलमान लोग किसी दूसरी किताब को सत्य नहीं मानते, इस लिये ख़ुदा की आज्ञा का अभिप्राय यही क़ुर्आन् की आज्ञाओं से है जो सारी की सारी मुहम्मद साहब की अपनी आज्ञायें हैं।

क़ुर्आन् के इन लेखों का देखने से क़ुर्आनी ख़ुदा के गौरव के स्थान में उसकी अत्यन्त निर्बलता प्रतीत होती है। मानो वह एक पुतला है जो मुहम्मद साहब के इशारों पर नाच रहा है। हम स्वयं आश्चर्य में हैं कि हमारे मुसलमान भाई नित्य प्रति पढ़ने पर भी इस बात का कभी विचार नहीं करते कि जहां हज़रत की बीबीने कहा, ख़ुदाने झट आयत नाज़िल कर दी। जहां मुहम्मद साहब लोगों के घर बैठे रहने से असन्तुष्ट हुए, झट आयतें उतरने लगीं। हमको इस बात पर अधिक वाद-विवाद करने की आवश्यकता नहीं है कि क़ुर्आन् शरीफ़ मुहम्मद साहब की अपनी ही स्वार्थपूर्ण आज्ञाओं का संग्रह है, जिसमें अरब के पोलिटिकल क़ानून का संग्रह भी सम्मिलित है अथवा पुरानी घटनाओं का इसमें

उल्लेख है। इसमें ईश्वरीय ज्ञान का कोई गुण नहीं है। हाँ इसको एक प्रकार से इतिहास तो कहा जा सकता है।

हमारे इन शब्दों से कोई यह न समझे कि क़ुर्आन् शरीफ़ में कोई भी बात अच्छी नहीं है; किन्तु यह कि इसमें जितनी बातें अच्छी हैं वे नई नहीं हैं; अपितु पुरानी पुस्तकों से उद्धृत की गई हैं।

क़ुर्आन् में क़िस्से कहानियों का तो बृहद् संग्रह है ही। इस के अतिरिक्त क़ुर्आन् में ऐसी बातें भी अधिकता से पाई जाती हैं कि जो सर्वथा विद्या और बुद्धि के विरुद्ध हैं सत्य और असत्य को परखने के लिये विद्या और बुद्धि के अतिरिक्त, अन्य कोई कसौटी नहीं हो सकती। अतः जो बात विद्या और बुद्धि के विरुद्ध हो उस के असत्य होने में कोई सन्देह नहीं। और जिस वाक्य में झूठ विद्यमान हो वह ईश्वरीय वाक्य कभी भी नहीं हो सकता।

हमारे मुसलमान मित्र हम से प्रश्न करेंगे कि क़ुर्आन् में कौनसी बात विद्या और बुद्धि के विरुद्ध है? प्रथम तो यह कि क़ुर्आन् में आकाश के विषय में जो कुछ लिखा है उसमें पारस्परिक विरोध होने के अतिरिक्त वह स्वतः भी विद्या और बुद्धि के विरुद्ध है। जैसे एक स्थल पर तो क़ुर्आन् में आकाश को बुर्जों वाला लिखा है; देखो क़ुर्आन् सिपारा ३० सूरतुल् बुरूज पृष्ठ ७६७—

वस्समाएज़ातिल् बुरूज्।

(अनु०) क़सम है आसमान बुर्जों वाले की। दूसरी जगह आकाश को छत के समान कहा है; यथा—देखो क़ुर्आन् सिपारह १ सूरतुल् बक़र।

अल्लज़ी जाअलकुमुल् अर्जा फ़िरा शव्व-स्समाआ माअन् व अन्ज़ल मिनस्समाए फ़-ख़्रुजुबिही मिनस्समराते रिज़क़ल्लकुम् फ़लाते तजूअलू लिल्लाहे अन्दादव्व अन्तुम् तअ़लमून

(अनु०) जिसने किया वास्ते तुम्हारे पृथ्वी को विछौना और आसमान को छत और उतारा आसमान से पानी, तब निकाला साथ उसके फूलों से भोजन वास्ते तुम्हारे, बस, मत नियत करो अल्लाह के बराबर तुम जानते हो।

तीसरी जगह आकाश को जालीदार वतलाया है, और कहीं आसमान की खाल उतारना लिखा है, देखो कुर्आन् सिपारा ३० सूरतुल् तक्वीर्।

वइज़स्समाओ कुशितत्।

अर्थात् और जिस समय आसमान की खाल उतारी जावेगी। और कहीं पर आसमान का फटजाना लिखा है, देखो कुर्आन् सिपारह ३० सूरतुल् अन्फ़तार।

वइज़स्समाउन्फ़तरत्।

अर्थात् जिस समय आसमान फटजावे। और कहीं पर आसमान का खोलना लिखा है। देखो कुर्आन् सिपारा २६ सूरतुल्।

फ़इज़ननुजूमो तुमिसत् ।

वस जिस वक्त कि तारे मिटाये जावेंगे। और "वइज़स्समाए फ़ुरिजत्" और जिस समय आसमान खोला जावे।

पाठकगण! क़ुर्आन् में आसमान के विषय में भिन्न २ प्रकार से भिन्न २ बातें लिखी हैं, परन्तु आसमान क्या वस्तु है यह कहीं पर भी नहीं लिखा। जितने फ़िलासफ़र (तत्ववेत्ता) आज तक हुये हैं वे आसमान का अस्तित्व ही अस्वीकार करते हैं क्योंकि आसमान के अर्थ आकाश के हैं और आकाश शून्य को कहते हैं। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या आकाश कोई सजीव. शरीर धारी वस्तु है कि जिसकी खाल उतारी जावेगी? खाल तो जीवधारियों के शरीर के ऊपर हुआ करती है। यदि कहो आकाश कोई सजीव चेतन वस्तु है तो वह जालीदार और बहुत बुर्जों वाला कैसे हो सकता है? क्योंकि ये तो सब निर्जीव वस्तुओं में हो सकता है। यदि जीव रहित है तो उसको खाल उतारने से क्या आशय? हमारे मुसलमान भाई कहेंगे कि तुम मनुष्यों की विद्या का परमेश्वर की विद्या से किस प्रकार मिलान करते हो। उसका उत्तर यह है कि अभी तो यह बात साध्य कोटि में है कि क़ुर्आन् ईश्वरीय पुस्तक है या नहीं? जब तक मुसलमान लोग क़ुर्आन् को विद्या और बुद्धि-पूर्वक ईश्वरीय वाक्य सिद्ध न करदें तब तक उनके केवल कथनमात्र से, क़ुर्आन् ईश्वरीय वाक्य कैसे हो सकता है? अब तक जितने भी नियम ईश्वरीय ज्ञान के लिये नियत किये गये हैं, उनमें से क़ुर्आन् में एक भी विद्यमान नहीं! हां, क़ुर्आन् में प्रतिज्ञायें तो बहुत की गई हैं परन्तु उनको सिद्ध करने के लिये कोई भी विद्या

और बुद्धि विहित हेतु वा युक्ति नहीं दी गई। हां, सौगन्धें (क़समें) तो अवश्य बहुतेरी खाई गई हैं जो इसके मनुष्य कृत होने का पूर्ण प्रमाण है। यदि क़ुरानी ख़ुदा सर्व शक्तिमान् होता, तो प्रत्येक मनुष्य के चित्त में क़ुरानी विद्या का प्रवेश कर देता, परन्तु वह तो मुसलमानों का लड़ा कर अपना शासन जमाना चाहता है, या इधर-उधर से ऋण लेकर दिन काट रहा है। उसमें अपने वाक्य को विद्या और बुद्धि के अनुसार सत्य सिद्ध करने की शक्ति नहीं। यही कारण है कि अपनी बात को सच्ची सिद्ध करने के लिये सौगन्धें खाता है या मुसलमानों को भड़काकर, तलवार के द्वारा उसको सत्य सिद्ध करने का यत्न करता है। भला ऐसे मनुष्यों को जो अपने कथन को विद्या और बुद्धि से सिद्ध न कर सके, और न लोगों की बुद्धि में कोई बात बैठा सके, और केवल कसमों से और तलवार के ज़ोर से सच्चा सिद्ध करना चाहे उसको मूर्खों के अतिरिक्त अन्य कोई भी बुद्धिमान् मनुष्य ईश्वर कहने के लिये तैयार न होगा? क्योंकि ईश्वर में वह शक्ति है कि किसी प्रकार की सौगन्ध खाये अथवा कठोरता प्रयुक्त किये बिना ही अपने वाक्य की सत्यता प्रत्येक के हृदय में स्थिर कर सकता है जैसे कि वेदों के प्रकाशक परमात्मा ने अपने ज्ञान के संसार में प्रकाशित किया। अब भी जो लोग उसकी खोज करते हैं वे उसकी सत्य विद्या के विषयक गम्भीरता को जान लेते हैं, और उसको ईश्वरीय ज्ञान मानने के लिये तैयार हो जाते हैं। कारण इसका यह है कि वेदों की शिक्षा को प्रकाशित हुए एक अरब सत्तानवें करोड़ वर्ष बीत जाने पर भी, आज तक इसमें घटाने बढ़ाने की आवश्यकता नहीं हुई। परन्तु मनुष्य कृत पुस्तकें तौरेत, ज़बूर, इंजील और क़ुरान में से ३४ सौ

वर्षों के भीतर इस्लाम के कथनानुसार, तीन आज्ञाएं तो रद्द होगई और क़ुर्आन् की भी बहुत सी आयतें—जैसे पूर्व तो १० काफ़िरों से एक मुसलमान का मुक़ाबिला कराया, फिर उसको रद्द करके दो के मुकाबले में एक को ला जमाया आदि रद्द होगईं। मानो पहिली आज्ञा रद्द करदी गई। अब इस अपूर्ण कथन को-जिसमें न तो ठीक २ जीवात्मा के गुण का पता मिलता है और न ईश्वर के गुण कर्म स्वभाव ही भले प्रकार बताये गये हैं, और नहीं यह बताया गया कि मनुष्य किस प्रकार मुक्ति प्राप्त कर सकता है, और न सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने का ही कोई उपाय बताया गया है— विना सोचे समझे, किस प्रकार ईश्वरीय पुस्तक मान लिया जावे ? क़ुर्आन् की आज्ञाओं में एक दूसरे का खंडन पाया जाता है पहिले तो यह कहा कि जिधर चाहो उधर ही मुँह करके नमाज़ पढ़ो, फिर उसका खंडन करके यह कहा कि काबे की ओर मुँह करके पढ़ो। तात्पर्य्य यह कि जिस ईश्वरीय ज्ञान के गुण की क़ुर्आन् में खोजकी जावे है, उसीका क़ुर्आन् के भीतर सर्वथा अभाव है। हम आश्चर्य में हैं कि हमारे मुसलमान मित्र, विना सोचे विचारे, क्यों इसको ईश्वरीय पुस्तक मान बैठे ?

परन्तु जब उस समय को याद किया जाता है जब इस क़ुर्आन् का प्रकाश अरब देश में हुआ तो चित्त को कुछ शान्ति होती है कि ऐसे लोगों में किसी पुस्तक को ईश्वरीय सिद्ध कर देना कौनसी बड़ी बात है। क्योंकि आज कल भी चतुर-चालाक मूर्खों में अपनी प्रतिष्ठा स्थिर कर ही लेते हैं। यदि मुसलमान मित्रों को निश्चय न हो वे मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद क़ादियानी को-जो मुसलमानों के

पैग़म्बर होने का दावा करते हैं, जिनके इलहाम समाचार पत्रों और विज्ञापनों के द्वारा विदित होते रहते हैं, जिनकी शतशः बातें असत्य सिद्ध हो चुकीं—फिरभी देखलें कि मूर्खों में वह बराबर पैग़म्बर बनते चले जा रहे हैं। जिस प्रकार मुहम्मद साहब की पैग़म्बरी का कारण उनके सहायक उमर और अली आदि हुए, उसी प्रकार मिर्ज़ा जी के भी सहायक मौलवी नूरुद्दीन आदि हो गये जो मिर्ज़ा जी के मरण के उपरान्त गद्दी के अधिकारी बने। जब कि ऐसे प्रकाश के समय में भी मिर्ज़ा साहब इसलामी पैग़म्बर बन गये तो उस अन्धकार के समय में और अरब जैसे मूर्ख देश में, जहां उस समय विद्या के सूर्य्य के प्रकाश का चिन्ह तक विद्यमान न था, मुहम्मदसाहब जैसे समयानुभवी और उच्च कुलोत्पन्न मनुष्य का—जो अपने समय के सब से उत्तम ललित-भाषी थे—पैग़म्बर हो जाना कौनसी बड़ी बात है? जब मुसलमानों का एक बड़ा समुदाय लूटमार के लालच से मुसलमान होगया, तो अन्य देश बलात् (जबरन) मुसलमान बनाये गये। इसलाम तलवार का मज़हब है, उसमें विद्या और बुद्धि का कुछ भी काम नहीं। बहुत लोग कहेंगे कि अरबी भाषा में तो बहुत सी विद्याएँ पायी जाती हैं, फिर अरब वालों को मूर्ख समझना कौन सी बुद्धिमानी है। हमारे उन मित्रों को ध्यान रखना चाहिये कि जो पुस्तकें अरब में इस समय पाई जाती हैं वे मुहम्मद साहब के उपरान्त दूसरी भाषाओं से अनुवादित होकर अरबी में सम्मिलित हुई हैं। मुहम्मदसाहब से पूर्व अरब देश की बहुत ही बुरी अवस्था थी। लगभग सारे के सारे ही निवासी मूर्त्ति पूजक थे, तथा इनमें और भी बहुत से मिथ्या विश्वास विद्यमान थे, यहां तक कि मुहम्मद साहब के पिता स्वयं मूर्त्ति

पूजक थे और मक्के के मन्दिर के पुजारी थे, और मक्का उस समय सारे देश की मूर्त्ति पूजा का गढ़ था। अन्ध विश्वास का तो वहां इतना प्रसार था कि इसका प्रमाण कुर्आन् के प्रत्येक पृष्ठ से मिलता है। जिन्न, भूत और फरिश्तों के विषय में जो कुर्आन् में लिखा है, उससे समझा जा सकता है कि उस समय अरब देश की क्या अवस्था थी। देखो कुर्आन् सिपारह २२ सूरते फ़ातिर पृष्ठ ५३८—

अल्हम्दोलिल्लाहे फ़ातिरि स्समावाते वल् अर्जे जाइलिल् मलायकते रुसुलन् उली अज-निहतिम्मस्ना व सुलासा व रुबाआ।

अर्थात् सब प्रशंसा वास्ते अल्लाह के है पैदा करने वाला आसमान और जमीनों का, फ़रिश्तों को सन्देश लाने वाला. पंखों वाले दो दो तीन तीन और चार २। इसके हाशिये पर अब्दुलक़ादिर साहब फ़रमाते हैं कि जिब्राईल के छः सौ पर हैं। अर्थात् कुर्आनी फ़रिश्ते परन्द हैं, मनुष्य नहीं। परन्तु आश्चर्य इस बात का है कि छः सौ पर वाला जिब्राईल फ़रिश्ता मुसलमानों के सामने मुहम्मद साहब के पास वही लेकर आता रहा, परन्तु किसी मुसलमान ने न देखा, मानो सारे के सारे मुसलमान ऐसी स्थूल वस्तु को ही न देख सके, तो फिर आवागमन और जीव प्रकृति के अनादित्व जैसे सूक्ष्म विषय को कैसे समझ सकते हैं। फरिश्तों के पक्षी होने का खंडन इस बात से होता कि युद्ध उहुद में जो कुर्आनी खुदा ने मुहम्मदसाहब के लिये फ़रिश्तों की फ़ौज सहायता के लिये भेजी थी, उसमें फ़रि-

रते घोड़ों पर सवार थे। क्यों कि पक्षियों को सवारी की कुछ आवश्यकता नहीं होती, इसलिये या तो फ़रिश्तों के पंख होना असत्य है अथवा उनका घोड़ों की सवारी करना सिद्ध नहीं होता।

सब से अधिक शोक की बात यह है कि कुर्आनी ख़ुदा ने क़ुर्आन् के इलहामी होने में कोई भी ऐसी युक्ति नहीं दी कि जिससे क़ुर्आन् का इलहामी होना सिद्ध हो। हां कहीं २ यह कहा है कि यदि तुम सच्चे हो तो ऐसी एक सूरत बना लाओ। अब विचार करने से यह विदित नहीं होता कि कुर्आनी ख़ुदा का किस सूरत से अभिप्राय है? कौनसी सूरत के समान सौन्दर्य्य चाहता है, अथवा उसके विद्या सम्बन्धी विषय की तुलना चाहता है? क्योंकि क़ुर्आन् में केवल इतना लिखा है—देखो क़ुर्आन् पारा २ सूरये बक़ पृष्ठ ५—

वइन् कुन्तुम् फ़ी रैबा मिम्मा नज़्ज़ल्ना अब्दिना फ़ातू बिसूरतिम्मिम्मिस्लिही वदऊशुहदा अकुम मिन्दूनिल्लाहे इन कुन्तुम् सादिक़ीन्।

अनुवाद—और अगर हो तुम बीच शक के उस चीज से कि उतारा हमने ऊपर बन्दे के अपने, तब ले आओ एक सूरत मानिन्द उसकी के और पुकारो शाहिदों अपनो क वास्ते अल्लाह के अगर हो तुम सच्चे।

इस आयत से इस बात का कुछ पता नहीं मिलता कि क़ुर्आन् का ख़ुदा किस सूरत की तुलना की आयत वा सूरत

बनवाना चाहता है। और किस गुण को तुलना कराना चाहता है। यदि इस बात को खोल दिया होता तो आज तक सैकड़ों किताबें क़ुरआन से अच्छी दिखलाई जातीं परंतु यह वाक्य इस प्रकार का है जिस से कोई परिणाम नहीं निकलता। यदि मुसलमान कहें कि क़ुरआन के समान फ़साहत (लालित्य) किसी किताब में नहीं है तो कालिदास और शेक्सपियर के नाटक और नॉवेल, और वारिस शाह का हीर रांझा पढ़ना चाहिये। तुलसीदास जी की रामायण जितनी फ़सीह (ललित) है उसके समान तो क़ुरआन में लालित्य है नहीं? परन्तु कठिनता तो यह है कि हमारे मुसलमान मित्र संस्कृत विद्या से अनभिज्ञ हैं, नहीं तो क़ुरआन से अधिक ललित पुस्तकें संस्कृत में उनको दीख पड़तीं। यदि कहें कि अरबी भाषा में नहीं तो फ़ैज़ी का बेनुक़्ता क़ुरआन देखें। परन्तु केवल अरबी भाषा की फ़साहत इलहामी होने का हेतु नहीं। विदित होता है कि अरबी भाषा क़ुरआन के भाषा-लालित्य का दावा केवल अरब वालों के लिये ही किया गया है, नहीं तो संसार में इससे अधिक ललित पुस्तकें विद्यमान हैं। अगर क़ुरआन ख़ुदा का बनाया हुआ होता तो अरब वालों के ही लिये यह नहीं कहता कि ऐसी सूरत बना लाओ किन्तु दूसरे देश वासियों से भी तुलना करने के लिये कहता। यदि यह कहा जावे कि "विषय" के विषय में परीक्षा करने के लिये "दावा" किया गया है तो बहुत से लोग यह कहते हैं कि यह दावा केवल सूरते फ़ातिहा के लिए है, क्यों कि ऐसा उत्तम लेख दुनियां की किसी पुस्तक में नहीं है।

परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं क्यों कि प्रथम तो जो कुछ कथन है क़ुरआन के कर्त्ता का नहीं किन्तु यह

सम्पूर्ण प्रकरण यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के मन्त्रों का आशय रूप है जो ईशोपनिषद् के नाम से प्रसिद्ध है, जिसका उर्दू अनुवाद * भी छप चुका है। यदि आप लोग पढ़ें तो पता लग जायगा कि क़ुर्आन् ईश्वर के विषय में कुछ भी नहीं जानता, यदि वेदों में यह विषय न होता तो क़ुर्आन् इतने से भी कोरा रहता।

वेद, क़ुर्आन्, इञ्जील, ज़बूर और तौरैत से सिद्ध हो चुका है; इस लिये वह विषय जो पहिले से ही वेद में विद्यमान हो क़ुर्आन् के कर्ता का नहीं हो सकता, अतः वह इलहामी भी नहीं हो सकता।

क़ुर्आन् में इस बात को छोड़ कर कि "मुहम्मद साहब ख़ुदा के रसूल हैं और उनकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये" अन्य कोई ऐसा विषय नहीं जो कुरान से पूर्व विद्यमान न हो तथा स्त्रियों की कलह और झंझट को छोड़ कर, सभी क़िस्से-कहानी तौरेत, ज़ुबूर और इंजील में विद्यमान हैं, वहीं से सबके सब लिये गये हैं; परन्तु तौरैत, ज़ुबूर और क़ुर्आन् के किस्सों में पारस्परिक बहुत से विरोध हैं। हमें बड़ा आश्चर्य है कि ख़ुदा ने जो कुछ तौरेत में कथन किया है वह सत्य है अथवा क़ुर्आन् का कथन सत्य है? हमारे मुसलमान मित्र कहेंगे कि जब ये सारी कितावें क़ुर्आन् के आने से मंसूख हो गईं तो उनका तुलना क़ुर्आन् से किस प्रकार हो सकती है? क़ुर्आन् प्रचलित नियम है, और तौरेत आदि मन्सूख हुए नियम हैं।

---

* ईशादि उपनिषदों का स्वा० दर्शनानन्द कृत हिन्दी तथा उर्दू अनुवाद 'प्रेम-पुस्तकालय' आगरा से मिल सकता है, पाठक अवश्य पढ़ें।

परन्तु प्रश्न तो यह है कि केवल कानून मंसूख हो सकते हैं अथवा ऐतिहासिक घटनायें भी मंसूख हो जाया करती हैं? इस बात को सब मानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपनी आज्ञा को बदल सकता है परन्तु किसी घटना के विषय में, जिसकी उसने साक्षी दी हो इन्कार नहीं कर सकता, जब तक वह यह सिद्ध न करदे कि साक्षी देते समय मैं पागल था। इससे यह सिद्ध होता है कि या तो वह झूठा है—और उसने पहले सत्य लिखवाया था, परन्तु अब उसने अपनी स्वार्थ-सिद्ध के लिये दूसरा झूठा बयान लिखवाया है।

परन्तु नये बयान से पिछला बयान झूठा सिद्ध नहीं हो सकता। यदि हमारे मुसलमान मित्र तनिक भी न्याय पर आरूढ़ हो जावें तो दुनियां से वह अन्धकार, जो असत्य विचारों के कारण फैल रहा है, पूर्णतः दूर हो जावे। यद्यपि अरब देश की अस्त व्यस्त और अस्थायी जातियों को इस्लाम से कुछ लाभ पहुँचा हो, परन्तु अन्य देशों के लिये तो वह अत्यन्त ही हानिकारक सिद्ध हुआ है। यह विवाद तो चलता ही रहेगा परन्तु मुसलमानो को यह विचार अवश्य करना चाहिये कि क़ुर्आन् ख़ुदा को एक देशी बतलाता है, और एक देशी ईश्वर हो नहीं सकता। क़ुर्आन् छः दिन में सृष्टि की उत्पत्ति बतलाता है और सातवें दिन ख़ुदा को अर्शपर बिठलाता है। कहीं पर 'कुन' कहने से सृष्टि की उत्पत्ति प्रकट करता है। यद्यपि सर्व-साधारण इस बात को सर्वथा एक साधारण बात समझते हैं परन्तु विद्वानों के विचार में यह बात विद्या के विरुद्ध है। क़ुर्आन् का मनुष्यों के मालिक ख़ुदा के लिये भी परिवर्तनशील सातवें दिन विश्राम की आवश्यकतावाला बतलाना उसे विकारी सिद्ध करता है।

इसके अतिरिक्त क़ुर्आन् ने यह नहीं दिखलाया कि उन छः दिनों में प्रथम दिन क्या बनाया, दूसरे दिन क्या बनाया ? यदि यह कहो कि इसका वर्णन तौरैत में ही आचुका है और यह बात वहीं से ली गई है तो तौरेत में अर्श पर चढ़ने की चर्चा नहीं है और यह बात क़ुर्आन् में मौजूद है। अब क्यों कि यह बात ख़ुदा की कोई ऐसी आज्ञा नहीं जो कि मन्सूख़ हो गई हो किन्तु यह तो एक घटना का वर्णन है। इसमें विरोध होना दोनों में से एक को झूठा सिद्ध करता है। दूसरे तौरेत ज़बूर और इञ्जील वालों का सबूत अर्थात् ख़ुदा के विश्राम का दिन रविवार है, परन्तु क़ुर्आन् के मानने वाले जुम्मा को विश्राम दिवस बतलाते हैं। अब प्रश्न यह है कि इन दोनों में से ठीक विश्राम का दिन कौनसा है ? कहने का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक घटनामें जो क़ुर्आन् ने पुरानी किताबों से ली है कुछ न कुछ अन्तर उनसे अवश्य है, जिस से सिद्ध होता है कि क़ुर्आन् के कर्त्ता ने जो पुराने क़िस्से सुने थे वे सब लिख दिये और अपनी योग्यता जतलाने को कुछ बातों में भेद भी कर दिया परन्तु यह न सोचा कि दो विरुद्ध बातें सत्य नहीं हो सकतीं, प्रत्युत उस समय सत्य हो सकती हैं कि जब उसके साक्षी एकसाही वर्णन करें।

जहां तक खोज की गई वहां तक न तो क़ुर्आन् की आवश्यकता ही प्रतीत हुई, और न उस में इलहामी होने के गुण ही पाये जाते हैं। केवल मुसलमान भाइयों ने पहिले तो तलवार और लालच से इसे स्वीकार किया था. क्यों कि मुहम्मद साहब के जीवन से, और उस लूट मार की बांट के झगड़ों के देखने से, जो मुहम्मद साहब के समय

में प्रदित हुए, इस बात का पूरा पता मिलता है कि उस समय जितने लोग लूट मार के वास्ते मुसलमान हुए, उसका दसवां भाग भी तो मत के मन्तव्यों को समझ कर नहीं हुए।

अब बहुत काल तक मुसलमानी मत में रहने से हमारे मुसलमान मित्रों के मनों में पक्षपात ने ऐसा अधिकार जमा लिया है कि वे क़ुरआन और पैग़म्बरों की सिद्धि के लिये ख़ुदा तक पर आक्षेप करने को तैयार हैं। यहां तक कि क़ुरआन में जो क़ुरआन के कर्त्ता ने हज़ारों सौगन्धें खाई हैं और क़ुरआन की सचाई को सिद्ध करने का यत्न किया है। उन सौगन्धों के खाने का भी दोष परमेश्वर के पवित्र नाम पर लगाते हैं, और यह नहीं सोचते कि जिस ख़ुदा ने सूर्य की उत्पत्ति और उसकी सत्ता का ज्ञान बिना सौगन्ध खाये करा दिया, जिस ने मृत्यु का भय प्रत्येक प्राणी के चित्त में उत्पन्न कर के उसके अभिमान को तोड़ दिया जिस की शक्ति के आधीन रह कर प्रत्येक परमाणु अपना कार्य कर रहा है, ऐसे सर्व शक्तिमान् को भी अपने कथन की सत्यता के लिये सौगन्ध खाने की आवश्यकता हुई और वह अपने कथन की सत्यता को संसारी मनुष्यों के मनों में न जमा सका। उसे मुसलमानों को लड़ा कर अपना काम चलाना पड़ा। सर्वेश्वर परमात्मा को ऋण लेने की आवश्यकता बतलाने वाला क्या कोई बुद्धिमान् हो सकता है? ख़ुदा पर कपट का कलङ्क लगाना! यहां तक कि वह कौन से दोष हैं जो क़ुरआन के कथनानुसार ख़ुदा पर नहीं लग जाते हैं? इस लिये उन मुसलमान मित्रों का जो वस्तुतः एक ईश्वर की उपासना का विचार रखते हों, यह मुख्य कर्तव्य है कि वे मनुष्य पूजा और मनुष्य हिंसा के

कोप से हाथ खींच कर, विद्या और बुद्धि से जो मनुष्य के सुधार के लिये दयालु परमात्मा ने दिये हैं, सत्य धर्म को गृहण करें।

सद्धर्म का सम्बन्ध, केवल मनुष्यों के आत्मा, हृदय और ईश्वर से है उस के लिये किसी दूसरे मनुष्य की सहायता और सांसारिक वस्तुओं की आवश्यकता नहीं। हज आदि सम्बन्धी जितनी बातें हैं, वह सब मनुष्यों के बनाये ढकोसले हैं। ईश्वर सब जगह और सब ओर विद्यमान है। जहां सच्चे भाव से उसकी उपासना होगी वहीं सफलता होगी। झूठे दिल से पैगम्बरों को मान कर और काबे की ओर बैठ कर नमाज़ पढ़ने से कोई लाभ न होगा। यदि ईश्वर की सृष्टि के साथ सद् व्यवहार किया जावे और उसके मन पर अधिकार प्राप्त किया जावे तो उससे जितना फल मिलता है वह जहाद के फल से, जिससे संसार नष्ट होता है, लाख गुना अच्छा है। क्यों कि जब कि ख़ुदा ने ही उन के मन पर मुहर करदी तो आपके कहने से और जहाद के करने से वे किस प्रकार धर्मात्मा बन सकते हैं। कुर्आन् के अनुसार मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं हैं और जो कर्म करने में स्वतन्त्र नहीं वह किस प्रकार पुण्य और पाप का भागी हो सकता है। देखो कुर्आन् सिपारा १ सूरतुल् बकर पृष्ठ ५।

"इन्नल्लज़ीना कफ़रूसवाउन् अलैहिम् आअन्ज़र्तहुम् अम्लम् तुन्ज़िर्हुम ला युअ्मिनून्"

अर्थ—निश्चय जो लोग कि काफ़िर हुए बराबर है ऊपर उनके क्या डराया तूने उनको और क्या न डराया तूने उनको, वह ईमान नहीं लावेंगे।

"खतमल्लाहो अला कुलूबे हिम् वअ़ला समएहिम् व अ़ला अबूसारेहिम् गिशावः वलहुम् अ़ज़ाबुन् अ़ज़ीम् ।"

(अनु०) मुहर की अल्लाने ऊपर दिलों उनके और ऊपर कानों उनके और ऊपर आँखों उन के परदा है, और वास्ते उनके अ़ज़ाब है बड़ा। हे मुसलमानो! तनिक, विचारो कि जिनको खुदाने काफ़िर बनाया और खुदा ने जिनके मनों पर मुहर करदी, अब वे किस प्रकार कुफ़्र को छोड़ सकते हैं? क्योंकि उनका तो अपने दिलपर कोई अधिकार ही नहीं—जैसा ख़ुदा ने बना दिया है वैसे बन गये। यदि वे स्वतन्त्र होकर कुफ़्र करते तो किसी प्रकार दोषी भी हो सकते थे, परन्तु ख़ुदा ने उन को काफ़िर बनाया, स्वयं ही मुहर भी लगा दी और स्वयं ही उनके वध करने की आज्ञा मुसलमानों को दे दी! क्या कोई भी न्याय-प्रिय, इस बात को ईश्वर का वाक्य मान सकता है? कभी नहीं। ईश्वर ऐसा अन्यायी नहीं कि स्वयंही मनुष्य के हृदय को कुकर्म करने के लिये बुरा बनादे और, स्वयं ही दण्ड दे। आज कल जितने मनुष्य धर्म भ्रष्ट हैं, क़ुर्आन की इस आयत के अनुसार तो, उन्हें ख़ुदा ने ही बनाया है। देखो क़ुरान ख़ुदा लोगों से उपहास भी करता है। देखो क़ुरान सिपारा १ बक़र पृष्ठ ४

अल्लाहो यस्तहज़ियो बिहिम् व या मुद्दहुम् फ़ी तुग़याने हिम् लअमहून् ।

अर्थात्—अल्ला ठठ्ठा करता है उनको और खींचता है उनको बीच उद्दण्डता उनकी के। प्रिय मित्रो! कुर्आन् के उपर्युक्त लेख से आपको विदित होगया होगा कि कुर्आन् ऐसे मनुष्य का कथन है कि जो ठठ्ठा करता है, कपट करता है, ऋण मांगता है, सौगंध खाता है, प्रतिज्ञा करता है, मुसलमानों को लड़ाकर लाभ उठाता है और पशु पक्षी आदि तथा मनुष्यों के वध की आज्ञा देता है, यदि ऐसे व्यक्ति को भी हमारे मुसलमान भाई खुदा समझें तो यह उनकी इच्छा है।

मृत्यु सिर पर सवार है, संसार की सारी वस्तुयें विनाशवान् हैं, केवल सत्य का मार्ग ही काम आने वाला है। यदि हम अपनी अज्ञानता से इस धर्मपथ से भटक गये तो हमसे अधिक अभागा कौन होगा?

उठो, प्यारे मुसलमान भाइयो! सोचो, विचारो, विद्या और बुद्धि से सत्यता की खोज करो। परमात्मा के नित्य नियमों का निरीक्षण करो, उनके अनुकूल चलने के लिये सांसारिक बाधाओं का भय त्याग दो, सत्य परमात्मा को प्रिय है वह दयालु है। तथा सत्यता मनुष्य की उन्नति का मूल है। धर्म से मनुष्यों को यदि हानि पहुंचे तो वह धर्म मनुष्य का बनाया हुआ है।

ईश्वर की आज्ञा वही है जिसमें सारे प्राणियों पर दया-

हो। दूसरों को दुःख देकर स्वयं अपना पालन करना मनुष्यता से गिराने वाला कर्म है। ईश्वर सर्व व्यापक और सर्वान्तर्यामी है, उस की न्यायसभा में न साक्षियों की आवश्यकता है और न वही-खाते के लेखे की, किन्तु सारा भेद वह स्वयं ही जानता है। इसलिये उसके कामों में किसी मनुष्य को या फ़रिश्ते को सम्मिलित करना उचित नहीं है वह अपनी शक्ति और स्वभाव से न्यायकर्त्ता और दयालु है। उसके कार्य्य में अन्याय को स्थान देना पाप है। न वह क्रूर है, न वह क्रोधी है, किन्तु न्यायमूर्त्ति है। उसके आश्रय से मनुष्य अपने अभीष्ट स्थान को पहुँच सकता है। किसी संसारी मनुष्य को उद्धारक बनाना ईश्वर के न्याय का नाश करना है, जो असम्भव है। समाप्तमिदम्।